समाजवादी अर्थशास्त्र की ओर

श्रीमन्नारायण
प्रधान मंत्री
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
७, जन्तर मन्तर रोड,
नई दिल्ली ।

प्रथम संस्करण.... मई १९५५.

मूल्य

एक रुपया आठ आना

नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली द्वारा मुद्रित और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी,
७ जन्तर मन्तर रोड, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित ।

देश के विभिन्न भागों से कांग्रेसजनों के बार बार अनुरोध पर श्रीमन्नारायणजी के इन लेखों को पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। लेखक ने यह लेख समय-समय पर आर्थिक समीक्षा के लिए लिखे थे।

आशा है यह पुस्तक भारतीय समस्याओं का अध्ययन करने वालों और खास तौर पर कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

विषय-सूची

समाजवादी अर्थ-व्यवस्था की ओर

राष्ट्रीय विकास परिषद् में भाषण देते हुए प्रधानमंत्री ने कहा कि भावी भारत का जो चित्र उनके मस्तिष्क में है "वह समाज का एक सर्वथा और संपूर्णतः समाजवादी चित्र ह।" "मै इस शब्द को उसके अनुदार अर्थ में कतई प्रयोग नहीं कर रहा बल्कि इस अर्थ में कर रहा हूं कि समूचे समाज के हित में उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार और नियंत्रण हो।" अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अजमेर अधिवेशन ने भी पूर्णतः स्पष्ट कर दिया था एक सम्मिलित सहकारी स्वराज्य और मंगलकारी राज्य कायम करने के लिये "मौजूदा सामाजिक ढांचे को, जो कि अभी तक बहुत कुछ लाभप्राप्ति की अर्थ-व्यवस्था पर आधारित है, एक समाजवादी अर्थ-व्यवस्था में क्रमश: बदलना होगा।" प्रधान मंत्री ने कहा है कि मुनाफा कमाने के व्यक्तिगत अथवा संगठित लालच के रूप में निजीउद्योग की वर्त्तमान धारणा आज "बिलकुल बेकार है" और यहां तक कि "बदकार" भी है। किन्तु. यदि "मुख्य लक्ष्य स्पष्ट रखा जाय" तो निजी उद्योगों के लिये भी बहुत काफी गुंजाइश हो सकती है।

हम प्रधान मंत्री के इन कथनों का स्वागत करते हैं और उन्हें कांग्रेस व सरकार के मूल सिद्धांत समझते हैं। कुछ विरोधी नताओं द्वारा लगातार इस बात के दोहराए जाने से हम तंग आ गए है कि कांग्रेस एक पूंजीवादी संगठन है और इसलिए समाजवादी विचारों व योजनाओं के खिलाफ है। यह गैर-जिम्मेदार बात है, और भद्दा राजनीतिक प्रचार है। कांग्रेस ने देश के लिये राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की और अब भारत की जनता के लिये जनतंत्रवादी एवं शांतिपूर्ण तरीकों से सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना उसका दृढ़ निश्चय है। हम पश्चिम या पूर्व के अन्य देशों के समाजवाद की नकल नहीं करना चाहते। एक देश द्वारा दूसरे देश के तौर-तरीकों की नकल कभी भी मुफीद न होगी। हर देश को अपनी निजी हालत और अपनी कौमी खसलत के मुताबिक अपनी जिन्दगी का तौर तरीका बनाना होगा। भारत ने तानाशाही तरीकों के खिलाफ जनतंत्रवादी राह से अपना नाता जोड़ा है। "मेरा खयाल है कि आगे चलकर, प्रधान मंत्री ने कहा, "जनतंत्रवादी और शांतिपूर्ण तरीका वक्त की बचत और उससे भी कहीं ज्यादा फलप्राप्ति की दृष्टि से कामयाब साबित होगा।" महात्मा गांधी ने भी हमें और दुनिया को यही पाठ पढ़ाया था। गलत तरीके अन्त में श्रेष्ठ

लक्ष्यों को भी भ्रष्ट कर देते हैं। और दरअसल हिंसात्मक "छोटे रास्ते" सामाजिक या आर्थिक क्रांतियों में लाभकर नहीं होते। पिछले सात सालों में भारत ने जनतंत्रवादी संयोजन द्वारा आर्थिक प्रगति के क्षेत्र में उल्लेखनीय और ठोस नतीजे हासिल किये हैं। किंचित् मात्र भी संदह नहीं कि दुनिया के किसी भी देश से, जिसमें अमेरिका और रूस भी शामिल हैं, हमारे आर्थिक विकास की सफलता के साथ तुलना की जा सकती है। यह न भूलना चाहिये कि अमेरिका के पास बहुत ज्यादा अछूती धरती और प्राकृतिक साधन होते हुए भी प्रथम श्रणी के औद्योगिक राष्ट्र बनने में उसे १०० वर्ष लगे। रूस को, १९१७ की अक्तूबर क्रांति के बाद, प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रारूप बनाने में ही ११ वर्ष लगे। चीन में, नई कम्युनिस्ट सरकार का ख्याल है कि समाजवाद की मजबूत नींव बनाने में १५ से २० वर्ष लगेंगे। लिहाज़ा, यह सोचना गलत है कि अधिनायकवादी आयोजन में जनतंत्रवादी आयोजन से जल्दी काम होता है। वास्तव में, हमारा दृढ़ मत है कि शांतिपूर्ण तरीके अधिनायकवादी प्रविधियों की अपेक्षा, अन्त में ज्यादा फुर्तीले और ज्यादा टिकाऊ साबित होते हैं। पर दूसरे देशों के आर्थिक आयोजन में दस्तन्दाज़ी करने की हमारी कतई नीयत नहीं है और न हम चाहते हैं कि दूसरे देश हमारी जनतंत्रवादी प्रक्रिया व प्रयोजन में हस्तक्षेप करें।

लेकिन, भारत की कल्पना के समाजवादी राज्य के स्वरूप को सदा अपने मस्तिष्क में रखना बहुत जरूरी है। यह अति आवश्यक है कि हमारे आयोजन का चित्र सदा स्पष्ट और साफ-साफ दिखाई दे। अ. भा. कां. कमेटी के अजमेर अधिवेशन के प्रस्तावानुसार हमारी आर्थिक नीति के मूल उद्देश्य हैं; (१) अधिकतम उत्पादन; (२) पूरी रोज़गारी, और (३) सामाजिक एवं आर्थिक न्याय। हम बड़े उद्योगों, खासतौर पर बुनियादी किस्म के उद्योगों के खिलाफ नहीं हैं। लेकिन जहां तक हो सके इन बड़े उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व हो और राज्य द्वारा ही वे व्यवस्थित होने चाहिये। जहां कहीं निकट भविष्य में बुनियादी उद्योगों का सामाजिक स्वामित्व संभव न हो, उनपर प्रभावपूर्ण सामाजिक नियंत्रण रखा जाना चाहिये। नए राजकीय उद्योग बनाने में, न कि पुराने साज-सामान वाले मौजूदा निजी उद्योगों के राष्ट्रीकरण में, देश के साधन लगाए जाने चाहिये; हां, राष्ट्रीय हित में कुछ अपवाद भी हो सकते हैं। जहां तक दैनिक आवश्यकता की वस्तुएं उत्पादन करने वाले उद्योगों का प्रश्न है औद्योगिक सहकारी समितियों के रूप में उनके विकेंद्रीकरण के लिये पूरा प्रयत्न किया जाना चाहिये। जैसा कि प्रधान मंत्री ने राष्ट्रीय विकास परिषद् में कहा था, बड़े पैमाने के उद्योगों की रोजगार देने की संभाव्य शक्ति बहुत ही सीमित है। बड़े पैमाने के उद्योगों द्वारा पूरी

रोजगारी दिलाने के लिये उन उद्योगों में "बेहिसाब" पूंजी लगानी होगी। "मुझे रत्ती भर भी संदेह नहीं है," श्री नेहरू ने कहा है, "कि छोटे और कुटीर उद्योगों पर ज़ोर देकर ही रोज़गारी की समस्या सुलझाई जा सकती है।" हम औद्योगिक क्षेत्र में टेकनीकल ज्ञान की प्रगति के विरुद्ध नहीं हैं। लेकिन वैज्ञानिक अनुसंधान के फल छोटे व कुटीर उद्योगों को इस प्रकार मिलने चाहिएँ कि अधिकतम उत्पादन, पूरी रोजगारी और सामाजिक व आर्थिक न्याय के मूल उद्देश्यों की उचित रूप से प्राप्ति हो सके। दूसरे शब्दों में, हम **आर्थिक कार्यक्षमता** न कि केवल **यांत्रिक कार्यक्षमता** के पक्षपाती हैं। यह जानना संतोषजनक है कि **अम्बर चरखा** नामक सबसे नई किस्म के चरखे द्वारा १५० करोड़ रु. की लागत पर करीब एक करोड़ लोगों को रोज़गार मिल सकेगा और प्रतिव्यक्ति १२ आने रोजी दी जा सकेगी। यह इस प्रकार का श्रमवर्धक यंत्र है जिससे भारत जैसे देश में बेरोजगारी या जरूरत से कम रोजगारी की समस्या को कारगर तौर पर हल करने में हमें मदद मिलेगी।

आचार्य विनोबा ने हाल ही में कहा है कि बिहार व देश के अन्य भागों में बाढ़ के प्रकोप से उन्हें इतना दुःख नहीं हुआ जितना कि इस बात से है कि ग्राम और कुटीर-उद्योगों की दशा बड़ी ही खराब है। हम अपनी आंखों के सामने कई ग्रामोद्योगों की दुर्दशा होते देख रहे हैं। खादी और हाथकरघा का काम करने वालों की दरअसल बहुत बुरी हालत है, हालांकि पिछले कुछ महीनों में कुछ सुधार हुआ है। चावल की मिलों के खुले मुकाबले में हाथ से धान कूटने का धंधा क्रमशः कमजोर पड़ता जा रहा है। गांव की तेल की घानियों की पैदावार तेल की मिलों के जोरदार मुकाबले में बंद होती जा रही हैं। चीनी की मिलों के सामने गुड़ और खांडसारी उद्योग खत्म हुए जा रहे है। हमारा यह मतलब नहीं कि कपड़ा, चावल, तेल या चीनी की सब मिलें फौरन बन्द कर दी जायं। लेकिन, बड़े व छोटे उद्योग और ग्रामोद्योगों की पैदावार के दायरों के बीच हदबन्दी करना निहायत जरूरी है। मसलन, जैसा कि योजना आयोग का सुझाव था, खाने के काम में लाये जाने वाले तेल निकालने का काम पूरी तौर पर गांव की घानियों के सुपुर्द होना चाहिये और गैर-खाद्य तेलों का काम मिलों को मिलना चाहिये। इसी प्रकार, धान कूटने का काम, पुष्टिकर आहार की दृष्टि से भी, हाथ से धान कूटने वालों पर पूरी तरह छोड़ देना चाहिये। खादी और हाथकरघे के उत्पादन के लिये खास किस्म का कपड़ा सुरक्षित रहना चाहिये। हमारा अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिये कि सब हाथ करघे अम्बर चरखे जैसे उन्नत चरखों की मदद से हाथ का कता हुआ सूत ही इस्तेमाल करें। हमारा विश्वास है कि अखिल भारतीय

खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड इन विशेष समस्याओं पर विचार करेगा और उसकी सिफारिशों के मुताबिक सरकार शीघ्र ही अन्तिम निर्णय लेगी।

भारत में समाजवादी राज्य के आदर्शों को पाने के लिये शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन लाना भी आवश्यक है। एक ओर शिक्षित युवकों में बहुत बड़े पैमाने पर बेरोजगारी और साथ ही दूसरी ओर पंचवर्षीय आयोजन की कई महत्व-पूर्ण योजनाओं को कार्यान्वित करने में प्रशिक्षित व्यक्तियों का प्रत्यक्ष अभाव एक ऐसा दुःखद विरोधाभास है जिसका आज हमें सामना करना पड़ रहा है। उदाहरण के लिये, हमें देहातों में बहुत से डाक्टरों और इंजीनियरों की जरूरत है। जैसा कि प्रधान मंत्री ने विकास परिषद् में कहा था, ग्राम कार्यक्रमों को अमल में लाने के लिये डाक्टरों और इंजीनियरों के पूरे पाठ्यक्रम की कई साल तक की शिक्षा का भारत इंतजार नहीं कर सकता। चीन में, अल्पकालीन और दीर्घकालीन, दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों का प्रबंध है। हमें भी अपने देश में ऐसा ही करना चाहिये। "मैं तो इस बात के लिये भी राजी हूं", प्रधान मंत्री ने कहा " कि आधे-सीखे या चौथाई-सीखे लोगों को काम में लगाया जाय ताकि तबदीली के अरसे में भी उन्हें कुछ मिल सके।" निश्चय ही, हमें शैक्षणिक मानदंड तो कायम रखने ही होंगे पर इस स्थिति का मुकाबला आपद काल की भावना से करना होगा। प्रधान-मंत्री ने आगे चल कर कहा: "मैं यह इसलिये कहता हूं क्योंकि पर्याप्त मात्रा में प्रशिक्षित व्यक्तियों के अभाव में आपकी सारी योजना ढह पड़ेगी।" हमें आशा है है कि अब शिक्षा प्रणाली और विकास योजनाओं में पहले से अधिक समन्वय होगा ताकि समाजवादी या सर्वोदय राज्य की ओर हम तेज कदम तरक्की कर सकें।

२२ नवम्बर, १९५४

भारत और कम्युनिस्ट मार्ग

श्री नेहरू ने, हाल ही में, दिल्ली की एक आम सभा में भारतवासियों को भारतीय कम्युनिस्ट और सम्प्रदायवादियों के उन दो विनाशकारी तत्वों से सावधान रहने की चेतावनी दी "जो कि अजहद बरबादी की ओर खींचने की मुतबातिर कोशिश कर रहे हैं ।" श्री नेहरू ने बतलाया कि भारतीय कम्युनिस्ट अपने विचारों में पुराने पड़ चुके हैं । उन्होंने ९० वर्ष पुरानी, युरुप की उस समय की स्थिति के आधार पर लिखी हुई कुछ लेखकों की किताबें पढ़ रखी हैं। रूसी क्रांति के बाद की लिखी कुछ दूसरी किताबें भी उन्होंने पढ़ी हैं और वे उन विचारों को वर्त्तमान भारत पर लागू करने की कोशिश कर रहे हैं। भारत की स्थिति पूर्णतः भिन्न है और हमें अपनी समस्याओं को अपने निजी ढंग से हल करना है। श्री नेहरू ने कहा कि भारतीय कम्युनिस्ट अपनी बेसमझी के कारण "देश को मुतबातिर पीछे खींच रहे हैं। उन्हें भारत की तरक्की और विकास के बारे में जानकारी नहीं है और इससे भी बदतर यह है कि वे जानकारी हासिल करने की परवाह तक नहीं करते।"

श्री नेहरू ने भारतीय कम्युनिस्टों की दो और खसलतों को लेकर उनकी जांच करते हुए कड़ी आलोचना की। एक तो कम्युनिस्टों का यह विश्वास कि देश की उन्नति लड़ाई-झगड़ों द्वारा ही हो सकती है और दूसरे, भारत की विदेशी नीति के प्रति उनका रुख। कम्युनिस्ट तैलंगाना में हिंसा और लड़ाई-झगड़े का ढंग आजमा चुके हैं। अब वे लोकसभा में भी आ गए हैं, लेकिन उन्होंने अपनी पुरानी आदत नहीं छोड़ी है। "वे पेशेवर खुराफाती हैं ।" श्री नेहरू ने कहा, "वे छोटे-छोटे मसलों को उभारते हैं और हाय-तोबा मचाए रखते हैं ताकि कुछ न कुछ गड़बड़ हमेशा बनी रहे।" हमारी विदेश-नीति के प्रति भारतीय कम्युस्निटों का रुख कुछ अजीब-सा रहा है। पहले वे भारत सरकार को "आंग्ल-अमरीकी साम्राज्यवाद की कठपुतली" कहा करते थे। लेकिन अब क्योंकि रूस और चीन भी भारत की विदेशी नीति की प्रशंसा करने लगे हैं, कम्युस्निट अपने आप को बड़ी बेढब हालत में पाते हैं। "वे हरएक चीज को रंगीन चश्मे से देखते हैं और यह स्वाभाविक ही है कि उन्हें हर तरह के रंगीन नज़ारे दिखाई देते हैं।"

कांग्रेस संसदीय दल की एक दूसरी सभा में बोलते हुए श्री नेहरू ने कहा कि "एक समय मैंने भी मार्क्स का अध्ययन किया था । मैं उससे बहुत काफी प्रभावित

हुआ था, हालांकि जब मैंने उसे पढ़ा था तो मुझ पर इतना ज्यादा असर न हुआ कि भारत में अपने काम में उसकी रहनुमाई मंजूर कर लेता............हमें अपने देश, अपनी जनता और उसकी पृष्ठभूमि के मुताबिक हालात को समझना है।" रूस और चीन के हालात एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज थे। उन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को यहां पर दोहराना निहायत नासमझी होगा। मसलन, चीन की मौजूदा सरकार चीन के ४० वर्ष के इतिहास का नतीजा है जो कि गृह-युद्ध, जापानी आक्रमण और घरेलू झगड़ों का लम्बा इतिहास है। अगर हम कम्युनिस्ट मार्ग पर चलने की कोशिश करें तो कैसे हम एक या दो पीढ़ी तक बरबादी का दौर जारी रख कर आगे बढ़ सकते हैं ?" श्री नेहरू ने कहा, " इसलिए मैं कम्युनिस्ट तरीके को नामंजूर करता हूं क्योंकि वह बिल्कुल अव्यावहारिक है। "शांतिपूर्ण तरीके से तरक्की करना हमारे देश के लिए कहीं ज्यादा फायदेमंद है और हमारे लिए कहीं बेहतर है क्योंकि अगर आप हिंसात्मक तरीके अपनायेंगे तो आप का स्तर आज से और नीचा गिर जायगा। इस देश में महात्मा गांधी की सफलता का कारण यही था कि वे भारत की बुनियादी समस्याओं को पूरी तरह समझते थे।" श्री नेहरू ने जनता से अपील की कि " वे एक होकर सहयोग की भावना के साथ सब काम करें ताकि गांधीजी द्वारा शुरू किया गया इंक्लाबी दौर अपनी मंजिल तक पहुंच सके।"

श्री नेहरू ने बार-बार स्पष्ट किया है कि कांग्रेस और भारत सरकार की नीति शांतिपूर्ण और लोकशाही ढंग से **"समाजवादी अर्थ-व्यवस्था"** कायम करना है। 'समाजवाद' शब्द पर किसी देश के समाजवादी दल का एकमात्र अधिकार अथवा 'सर्वाधिकार' नहीं है। हम इसका प्रयोग कट्टरता के साथ या बंधे हुए अर्थों में नहीं करना चाहते। इसका असली अर्थ है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था इस प्रकार ढाली और बनायी जाए कि उसमें व्यक्ति और असमाज के हितों का समन्वय हो तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच आर्थिक असमता कम से कम हो। यह तब ही संभव है जब कि आर्थिक ढांचा इस प्रकार का हो जिसमें पूरा रोजगार, अधिक उत्पादन और अधिक सामाजिक व आर्थिक न्याय प्राप्त हो सके। सब तरह के उद्योगों के राष्ट्रीकरण का सिर्फ नारा ही जरूरी समस्याओं को हल न कर सकेगा। हमारे मूल उद्योगों का अवश्य राष्ट्रीकरण होना चाहिए। लेकिन उपभोग की वस्तुओं के उद्योग, जहां तक संभव हो, औद्योगिक सहकारी समितियों के रूप में विकेंद्रित होने चाहिएँ। यह पिछड़ी हुई और "बैल-गाड़ी अर्थ-व्यवस्था" चालू करने की कोई दलील नहीं है। हमें छोटे उद्योगों और ग्रामोद्योगों में आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के फलों का उपयोग करना है,

मानव श्रम को बेकार करने के लिए नहीं, वरन् प्रति व्यक्ति उत्पादन की मात्रा को बढ़ाने के लिए। सबसे ज्यादा, यह एक **इंसानी** मसला है। भारतीय समाजवाद का उद्देश्य शरीर से समर्थ सब नागरिकों को किसी प्रकार के भेदभाव बिना लाभपूर्ण रोजगार प्राप्त कराना है और रहन-सहन के स्तरों की प्रत्यक्ष आर्थिक व सामाजिक असमताओं को कम कराना हैं। लेकिन यह उद्देश्य जनतंत्रवादी और शांतिपूर्ण तरीकों से ही प्राप्त किया जाना चाहिए न कि हिंसात्मक और अधिनायकवादी तरीकों से। संक्षेप में, कांग्रेस का उद्देश्य सर्वोदय या गांधीवादी समाजवाद है न कि साम्यवाद अथवा जनतंत्रवादी समाजवाद—जैसा कि पश्चिमी देशों में इन शब्दों को समझा जाता है, और काम में लाया जाता है। हम यह दावा नहीं करते कि महात्मा गांधी द्वारा हमारे राष्ट्र और संसार को सिखाए गए आर्थिक व सामाजिक लक्ष्य प्राप्त किए जा चुके हैं; लेकिन हमारी हार्दिक कामना है कि भारत इस लक्ष्य की ओर बढ़े और इस महान व कठिन कार्य में जनता के सभी वर्गों का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

सर्वोदय और गांधीवादी समाजवाद की भी संकुचित और रूढ़िवादी ढंग से व्याख्या करने में एक खतरा है। इस खतरे से हमें बचना चाहिए। गांधीजी ख्वामखयाली न थे, बल्कि एक व्यावहारिक आदर्शवादी थे। वह यह पसन्द न करते थे कि लोग किसी खास नीति को पूरी तरह समझे बिना ही उसका अनुसरण करें। अतः हमें विनम्रता और जिज्ञासा की भावना के साथ अपना दिमाग खुला रखना है। लेकिन सदा हमारे मानस में अहिंसात्मक और जनतंत्रवादी पद्धति पर आधारित वर्गविहीन और जातिविहीन समाज का मूलभूत उद्देश्य रहना चाहिए। कम्युनिस्ट मार्ग भारत जैसे देश के लिए न उपयुक्त है और न कभी होगा, जहां कि मानव व्यक्तित्व के प्रति सम्मान और सृजनकर्त्ता के सम्मुख सब-की समानता पर आधारित गूढ़ दर्शन और संस्कृति की एक लम्बी और भव्य परम्परा चली आई है। गांधीजी ने कहा है कि "यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत कभी भी कम्युनिजम नहीं अपना सकेगा और लेनिनवाद इस मिट्टी में जड़ नहीं जमा पाएगा।" किसी ने गांधीजी से कहा: "लेकिन भारतीय कम्युनिस्ट तो स्टालिन के ढंग का साम्यवाद चाहते हैं और इसके लिए वे आपका नाम काम में लाना चाहते हैं।" गांधीजी ने दृढ़तापूर्वक कहा, "वे कामयाब न होंगे"। आचार्य विनोबा ने भी, जो कि महात्मा गांधी के महानतम जीवित शिष्य हैं, भारतीय कम्युनिस्टों के तरीकों की स्पष्ट शब्दों में निन्दा की है। विनोबाजी ने कहा, "भारत के कम्युनिस्ट न सिर्फ कट्टरपंथी ही हैं बल्कि उनके दिमाग के दरवाजे भी बन्द हैं। उनकी अपनी स्वतन्त्र बुद्धि नहीं है। यदि रूस में नीति परिवर्त्तन

होता है तो भारत के कम्युनिस्टों की नीति में भी परिवर्तन आ जाता है। उनकी अपनी स्वतन्त्र बुद्धि नहीं है।"

लेकिन कम्युनिस्टों को सिर्फ बुरा-भला कहने से हमारा असली मतलब हासिल न होगा। हमें एक निश्चयात्मक दृष्टिकोण, एक सबल विचारधारा अपनानी है। जाति, धन अथवा सामाजिक श्रेणियों पर आधारित वर्गभेद का उन्मूलन करने में हमें पूरी ताकत लगा देनी है। हरेक नागरिक को हमें अहसास करा देना है कि वह भारत के सहकारी लोक-समाज के निर्माण में सक्रिय भागीदार है। धनी लोगों की "रंगरलियां" और गरीबों की "पस्त हालत" जल्द से जल्द दूर होनी चाहिए। हमारे आर्थिक आयोजन का लक्ष्य छोटे से छोटे और गरीब-से-गरीब को आरम्भिक सहायता पहुंचाना होना चाहिए। हमें सबसे पहले "सबसे अन्तिम" का ध्यान रखना चाहिए। शहरों और गांवों के बीच की गहरी खाई भी अब हमेशा के लिए पट जानी चाहिए। हमारे गांवों में एक स्वाभाविक आकर्षण और आर्थिक व सामाजिक खुशहाली होनी चाहिए। हमारे ग्रामोद्योगों और कुटीर-उद्योगों का संयोजित पुनर्विकास होना चाहिए ताकि बड़े और छोटे उद्योगों में अस्वस्थ और अनुचित होड़ न हो। हमें "स्वदेशी" अथवा "पड़ोसीपन" की भावना अपनानी चाहिए और विदेशी विलासप्रियता की चाह त्याग देनी चाहिए। हममें से हरेक को अपने व्यक्तिगत जीवन में आत्म-त्याग और संयम की भावना पैदा करनी है। यह सब कुछ सुव्यवस्थित रूप से और अत्यधिक आवश्यक समझ कर किया जाना चाहिए। इन निश्चयात्मक और रचनात्मक कदमों को उठाते ही भारत में कम्युनिज्म सुबह के कोहरे की तरह गायब हो जाएगा।

२२ दिसम्बर, १९५४

भारत और चीन

भारतीय प्रधान मंत्री की हाल की चीन यात्रा ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। लोकसभा में एक अल्प-सूचना प्रश्न का उत्तर देते हुए श्री नेहरू ने कहा कि "भारत और चीन का पहले से ज्यादा नजदीकी मेल ही अपने आप में एक ऐसा तथ्य है जो न सिर्फ इन देशों के लिए ही, बल्कि दूसरे देशों के लिए भी बहुत महत्व रखता है।" कांग्रेस संसदीय दल की हाल की एक बैठक में प्रधान मंत्री ने कहा कि उनकी चीन यात्रा ने "एशिया के दो महान देशों को परस्पर निकट लाने में सहायता पहुंचाई है।" ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन की ओर से मुलाकात करने आए हुए एक ब्रिटिश पत्रकार से बातें करते हुए श्री नेहरू ने संसार के विभिन्न राष्ट्रों के सम्मुख उपस्थित मुख्य समस्याओं को सुलझाने में "डराने धमकाने और ज़ोर-जबर्दस्ती की राह के खिलाफ" "दोस्ताना-मेल-मिलाप" के तरीके पर जोर दिया। पीकिंग में भाषण देते हुए भी प्रधान मंत्री ने इसी दोस्ताना तरीके पर ज़ोर दिया था। उन्होंने कहा था, "दो राष्ट्रों के बीच असली चीज सहनशीलता और सद्भावना ही है।" आगे चलकर उन्होंने कहा कि "अगर यह दोनों मौजूद हैं तो बाकी चीजें खुदबखुद आ जायेंगी। मुझे यकीन है कि यह चीजें भारत और चीन के बीच मौजूद हैं।"

यद्यपि श्री नेहरू ने एशिया और विश्व में शांति की स्थापना के लिए भारत और चीन के परस्पर मैत्रीपूर्ण सहयोग का स्वागत किया है, पर साथ ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि दोनों देशों के राजनीतिक और आर्थिक ढांचे में बुनियादी फर्क है। "हमने देखा कि हमारे आर्थिक या राजनीतिक ढांचों की इस प्रकार की भिन्नताओं से अनेक क्षेत्रों में, और खासतौर पर, एशिया और संसार में शांति कायम करने में रुकावट नहीं पैदा होनी चाहिए।" ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन के प्रतिनिधि से बातें करते हुए श्री नेहरू ने दोनों देशों की जनता के उत्साह का उल्लेख किया और कहा कि शायद यह उत्साह चीन में कहीं ज्यादा है। लेकिन उन्होंने साफ तौर पर बता दिया कि उन्हें पलटनशाही तरीके पसन्द नहीं आए। "हो सकता है, हम इन तरीकों को इस हद तक अपनाने में कामयाब न हों, **लेकिन हम अपने तरीके से ही काम करना पसन्द करते हैं।**" निश्चय ही, श्री नेहरू ने इन सैद्धांतिक मतभेदों पर विचार-विमर्श करना व्यर्थ समझा।" "हम जानते थे कि हमारे अलग-अलग राजनीतिक और आर्थिक ढांचे हैं, और

हमने यह बात यहीं खत्म कर दी ।" दोनों प्रधान मंत्रियों ने व्यावहारिक दृष्टि-कोण से औद्योगीकरण, बेरोजगारी, बाढ़-नियंत्रण, आबादी-नियंत्रण और वित्तीय साधनों जैसी कई समस्याओं पर बातचीत की। विश्व शांति और समृद्धि के दृष्टि-कोण से जिन आम मसलों पर दोस्ताना बातचीत हुई थी उनका आधार "पंच-शील" अथवा "पांच सिद्धांत" थे। चीनी नेताओं ने श्री नेहरू को आश्वासन दिलाया कि "अन्दरूनी या बाहरी" तौर पर भारत के मौजूदा हालात में दखल देने की उनकी नीयत नहीं है। "मैं अपनी तरफ से", श्री नेहरू ने कहा, "उनके वचन पर विश्वास करता हूं क्योंकि यह वचन एशिया और उनके देश और संसार की वस्तुस्थिति से मेल खाता है।" आज भारत और चीन दोनों ही अपने अपने देशवासियों के भौतिक और सांस्कृतिक स्तरों को ऊंचा उठाने के "महान साह-सिक कार्य में लगे हुए हैं।" दोनों एक-दूसरे से, कई तरह से, बहुत-कुछ सीख सकते हैं, यद्यपि हमारी आर्थिक और राजनीतिक विचारधाराओं में मूलभूत एवं सार-भूत अन्तर है ।

दार्जिलिंग में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं को संबोधित करते हुए श्री नेहरू ने विस्तार-पूर्वक बतलाया कि भारत और चीन की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में कितना महान अन्तर है। "चीन में," श्री नेहरू ने कहा, "समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता अथवा वाक्-स्वातंत्र्य नामक शायद ही कोई चीज़ हो।" जिस प्रकार भारत में न्यायपालिका स्वतंत्र है, चीन में नहीं है। उनका राजनीतिक अथवा संवैधानिक गठन भी पूर्णत: भिन्न है। उन्हें कई-कई घंटे, कई-कई दिन और कई महीने संसद में प्राय: लगातार चलती रहने वाली बहस पर खर्च नहीं करने पड़ते। भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और वाक्-स्वतंत्रता का पूरा उपयोग और कभी-कभी दुरूपयोग भी किया जाता है। न्यायपालिका ने कानूनों को अमल में लाना कुछ कठिन और जटिल बना दिया है। फिर भी भारत ने आज़ादी के पिछले सात वर्षों में अपने देशवासियों की सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारने में बहुत काफी कामयाबी हासिल की है। बेशक, हम चीन से बहुत कुछ सीख सकते हैं, और चीन भी भारत से बहुत कुछ सीख सकता ह। "लेकिन", कांग्रेस अध्यक्ष ने कहा कि "हम अपने निजी तरीके से काम करना पसन्द करते हैं, और किसी भी तरह की बाहरी दस्तन्दाजी बर्दाश्त न करेंगे।" "न मैं दूसरों के तरीकों में ही दखल देना चाहूंगा।" दार्जिलिंग की एक बड़ी सार्वजनिक सभा में भाषण देते हुए श्री नेहरू ने कहा कि "दूसरे देशों और दूसरे लोगों की नकल करने से कोई फायदा नहीं। नकल करने से कभी कुछ हासिल नहीं होता क्योंकि इससे कमजोरी और मुहताजी आती है।" भारत ने एक लोकशाही संविधान से अपना गंठजोड़ा

किया है, और साथ ही उसने स्वतंत्रता, शांति और जनतंत्रवाद की गांधीवादी राह अपनाई है। चीन का अपना अलग रास्ता है। फिर भी एशिया के यह दोनों महान देश एक दूसरे से बहुत-काफी सीख सकते हैं और निश्चित लाभ उठा सकते हैं। अधिक समृद्धि-शील, प्रगतिशील एवं शांतिपूर्ण संसार की स्थापना के अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न राष्ट्रों और विभिन्न लोगों के बीच अधिक सुखद संबंध स्थापित करने में परस्पर शांतिपूर्ण यह-अस्तित्व और अहस्तक्षेप के सिद्धांत बहुत मददगार साबित हो सकते हैं।

हम लोगों में से कुछ की यह गलत धारणा है कि लोकशाही ढांचे में तानाशाही राज्य की निस्बत तरक्की की रफ्तार कम होती है। यह तो सच है कि जनतंत्रवादी तरीका, शुरू में धीमा नज़र आता है, इसमें लम्बे-लम्बे बहस-मुबाहसे होते हैं और आग्रह-अनुग्रह व लोक शिक्षा-दीक्षा की प्रक्रिया द्वारा जनता की रजामंदी से उसका सहयोग प्राप्त किया जाता है। शुरू में, तानाशाही तरीका ज्यादा फुर्तीला नज़र आता है पर कुछ समय बीत जाने के बाद उसमें अड़चन और खिलाफत के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। अत: जनतंत्रवादी प्रक्रिया सुस्त होते हुए भी साबित-कदम है जब कि तानाशाही तरीका, तेज-कदम नजर आते हुए भी, अन्त में, ज्यादा झटके खिलाता है, जोखों में डालता है और खून खराबी कराता है। आयरलैंड जैसे छोटे से देश ने अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में करीब ८०० वर्ष लगाए थे, जबकि भारत ने, गांधीजी के महान् नेतृत्व में, शांति और अहिंसा के तरीकों से करीब एक-चौथाई सदी में ही आजादी हासिल कर ली। आजादी के बाद भी भारत एक जनतंत्रवादी ढांचे में, राष्ट्रीय आयोजन के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति करने में समर्थ रहा है। निस्संकोच यह दावा किया जा सकता है कि जो कुछ भारत ने पिछले सात सालों में हासिल किया है उसकी तुलना इसी अवधि में दुनिया के किसी भी देश में की गई तरक्की के साथ बखूबी की जा सकती है। हमें यह न भूलना चाहिए कि सोवियत रूस ने १९१७ की क्रांति के बाद अपनी प्रथम पंच-वर्षीय योजना का मूल आयोजन बनाने में पूरे ११ वर्ष लगाए थे। रूस के यह ११ वर्ष बेहद झंझट, झगड़े, वर्ग-युद्ध और भीषण अकाल के वर्ष थे। चीन में भी एकता, अनुशासन और भौतिक प्रगति की मौजूदा इमारत मुख्यत: भय, सैन्यीकरण और अधिनायकवादी शासन की नींव पर खड़ी हुई है। वहां कुछ जादू से हासिल नहीं हुआ है। अध्यक्ष माओ और प्रधान मंत्री चाऊ ने खुल्लमखुल्ला मंजूर किया है कि उनके देश को समाज-वादी राज्य की नींव डालने में करीब १५-२० वर्ष लगेंगे। चीन में बेरोज़गारी बहुत ज्यादा है और खाद्य तथा अन्य वस्तुओं से संबंधित जनसंख्या की समस्या

बहद मुश्किल है। अभी तक मुद्रा-स्फीति की प्रवृत्ति बनी हुई है—आजकल एक भारतीय रुपया ५,००० चीनी डालरों के बराबर है। आज भी, भूमि और उद्योग में बहुत काफी व्यक्तिगत संपत्ति मौजूद है। कम और ज्यादा आमदनियों के बीच की खाई कम करने की कोशिशें की जा रही हैं। लेकिन रूस में भी विभिन्न आय-समूहों के बीच १:८० के अनुपात में अन्तर है। यद्यपि चीन और रूस में विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में बहुत काफी वृद्धि हुई है, पर इन चीजों की बनावट का स्तर संसार के अन्य देशों की तुलना में सामान्यतः बहुत गिरा हुआ है।

अतः हमें भारत में, राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अपनी आर्थिक प्रगति का अन्दाजा लगाने में किसी भी प्रकार की "मानसिक विकृति" से पीड़ित नहीं होना चाहिए। तुलनात्मक दृष्टि से सात वर्ष की इस अल्प अवधि में हमने खाद्य, पुनर्वास और मुद्रास्फीति की अपनी समस्याओं को बहुत काफी हद तक सुलझा लिया है। ६०० से ज्यादा देशी रियासतों का भारतीय जनतंत्र के साथ एकीकरण करने में हम सफल हुए हैं। हमने कई बुनियादी उद्योग कायम किए हैं और अति भव्य राष्ट्रीय अनुसंधानशालाओं की एक शृंखला स्थापित की है। खाद्य और कई औद्योगिक वस्तुओं के अपने उत्पादन लक्ष्यों से भी हम आगे बढ़ गए हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक सारे देश में सामुदायिक योजनाएं पहुंचा देने की हमें उम्मीद है। यह उस देश के लिए कोई कम बात नहीं है, जिसे सदियों की राजनीतिक गुलामी में बहुत-सी मुसीबतें झेलनी पड़ी थीं। लेकिन हम हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठ सकते। लम्बी और सख्त मेहनत से हमें अभी और बहुत कुछ करना है। हमें दूसरे राष्ट्रों से सीखने के लिये सदा तत्पर रहना चाहिए। इतमीनान सदा ही अस्वस्थ और हानिकारक होता है। लेकिन अपनी जन्मज शक्तियों का विकास न कर दूसरे देशों की नकल करना सदा ही आत्म-घातक है। अतः हमें अपने आदर्शों और उद्देश्यों में आस्था रखते हुए आगे बढ़ना चाहिए। भाग्य ने हमें एक भारी लेकिन बुलन्द ज़िम्मेदारी बख्शी है। भारत को संसार को दिखाना है कि शांति, अहिंसा और जनतंत्रवाद की राह, संघर्ष, हिंसा और अधिनायकवाद की राह से शीघ्रतर और श्रेष्ठतर है। हम सबको विश्वास और धार्मिक लगन के साथ अपने इस महान उत्तरदायित्व को पूरा करने की भरसक कोशिश करनी चाहिए।

७ दिसम्बर, १९५४

स्वतंत्रता के सात वर्ष

किसी भी राष्ट्र के जीवन में और खासतौर पर भारत जैसे देश के जीवन में, जिसने सदियों की राजनीतिक दासता के बाद आजादी पाई हो, सात वर्ष कोई बहुत लम्बा अरसा नहीं है। लेकिन आजादी के इन सात बरसों में हम अपनी राष्ट्रीय अर्थ-अवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में वे फल प्राप्त कर पाए हैं जिनपर हम सबका गर्व करना उचित है। जैसा कि अ०भा० कां० कमेटी के अजमेर अधिवेशन में कहा गया है, "देश की खाद्य स्थिति में बहुत अधिक सुधार हुआ है, जो कि आशा से अधिक और निर्धारित लक्ष्यों से भी आगे बढ़ गया है और जिससे देश को पर्याप्त रूप से अनाज मिलते रहने का भरोसा हुआ है।" जब कि योजना काल में अतिरिक्त खाद्योत्पादन का लक्ष्य ७६ लाख टन था, पिछले तीन साल में अनाज की पैदावार, तखमीने के मुताबिक, कुल मिला कर १५ लाख टन हुई है। अनाज की पैदावार के अलावा औद्योगिक उत्पादन में भी आम तरक्की हुई है। योजना के अन्त तक सूती कपड़े का लक्ष्य ४७ अरब गज था, लेकिन १९५३ में ही, निर्धारित लक्ष्य से २ अरब गज ज्यादा कपड़ा बनाया गया। सीमेंट, कागज, चीनी, जहाज और रेल के डिब्बों व एंजिनों के निर्माण तथा खाद की पैदावार में भी बहुत काफी तरक्की हुई है। बहु-उद्देशीय नदी-घाटी योजनाओं से हमें पंचवर्षीय योजना के प्रथम तीन वर्षों में १६ लाख एकड़ से भी ज्यादा नई जमीन पर सिंचाई करने में मदद मिली है; बिजली की ताकत भी ४,२५,००० किलोवाट बढ़ गई है। कई नई रेलवे लाइनों के निर्माण के अतिरिक्त राष्ट्रीय राजमार्गों व सड़कों के निर्माण में भी बहुत काफी प्रगति हुई है।

कृषि व बड़े पैमाने के निजी व सार्वजनिक उद्योगों के क्षेत्र में इन उल्लेखनीय सफलताओं के अतिरिक्त, ग्रामीण इलाकों में, खासतौर पर लोकहित कार्यों ने भी बहुत तरक्की की है। सामुदायिक योजनाएं और राष्ट्रीय प्रसार सेवा योजनायें अभी तक ५०,००० गांवों और ३ करोड़ ६० लाख आबादी तक पहुंच चुकी हैं। और इन योजनाओं को दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक सारे देश में पहुंचा देने का हमारा इरादा है। यह भीषण उद्यम, निश्चय ही, ग्रामीण भारत के ढांचे और उसके काम-धंधों में एक बुनियादी तब्दीली ला देगा। इन योजनाओं की सफलता केवल हजारों प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं के कारण ही नहीं है बल्कि जनता के उस प्रशंसनीय उत्साह के कारण भी है जिसे इन योजनाओं ने जगाया है। उदाहरण के

लिए, २ अक्तूबर १९५३ को २१० राष्ट्रीय विस्तार सेवा केन्द्रों की स्थापना के बाद से, अब तक इनपर कुल सरकारी खर्च ४२.९९ लाख रुपये हुआ है, जब कि जनता का अंशदान ४५.८ लाख रुपये के बराबर है। राष्ट्रीय प्रसार सेवा केन्द्रों ने अपने शुरू के छः महीनों के काम में सिंचाई की छोटी-मोटी योजनाओं द्वारा ७८,०००एकड़ जमीन पर सिंचाई की, करीब १६,००० एकड़ पर फल और सब्जियां उगाईं और करीब १९,००० एकड़ों को काश्त के लिए दुरुस्त बनाया। लगभग ५,००० कुएं बनाए गये या उनकी मरम्मत की गई; १,००० नए स्कूल और करीब १,२०० प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्र खोले गए। राष्ट्रीय प्रसार सेवा के इन इलाकों में लगभग १,८०० मील लम्बी गांव की सड़कें बनाई गईं। १५ अगस्त १९४७ को ग्रामीण इलाकों में सिर्फ १८,००० डाकखाने थे; अब उनकी संख्या ४०,००० है। देश के विभाजन के समय पब्लिक टेलीफोनों की संख्या सिर्फ ३३९ थी, अब २,२६० है। इन सफल कार्यों को तुच्छ नहीं समझना चाहिए, विशेषतः जबकि विभाजन के जख़्मों को भरने के लिए राष्ट्र को अपने बहुत सारे वित्तीय साधन लगा देने पड़े थे। पुनर्वास के क्षेत्र में भी हमारे सफल कार्यों की तुलना एशिया और योरोप के किसी भी देश के साथ बखूबी की जा सकती है।

राष्ट्रीय गतिविधि के अन्य क्षेत्रों में भी हमारी सफलताएं पूरी तरह प्रशंसनीय हैं। भारत के विभाजन के परिणामस्वरूप नागरिक अराजकता से देश को बचाने के साथ ही, हम बिना एक भी गोली दागे ६०० से ज्यादा रियासतों का एकीकरण करने में सफल रहे हैं। सामंतशाही जमींदारों, मालगुजारों और जागीरदारों का उन्मूलन कर हम जमीन पर के दरम्यानी लोगों को हटा पाए हैं। कम्पनी कानून का संशोधन कर, सरकार अब सामन्तशाही के उन अवशेषों को दबाने, और जरूरी होने पर, उन्हें खत्म करने की कोशिश कर रही है जोकि उद्योग में मैनेजिंग एजेन्सी के रूप में मौजूद है। सम्पत्ति-शुल्क लगाना भी देश की गहरी आर्थिक असमताओं को दूर करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। दण्ड विधि, विवाह और तलाक जैसे सामाजिक रीति-रिवाजों और छुआछूत जैसी सामाजिक कुरीतियों के सुधार संबंधी महत्वपूर्ण विधान भी भारतीय संसद् में पेश किए जा चुके हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली को बुनियादी और प्रौद्योगिक शैक्षणिक ढांचे में क्रमशः बदला जा रहा है। हालांकि इस दिशा में प्रगति इतनी तेज-कदम नहीं हुई है जितनी कि हो सकती थी। विदेशी शासकों से प्राप्त प्रशासन की पुरानी पद्धति में अब तब्दीलियां लाई जा रही हैं। आज़ादी के गत सात वर्षों में देश के विभिन्न भागों में राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और उच्च प्रौद्योगिक संस्थाओं की एक शृंखला कायम की गई है। गांवों और शहरों दोनों में, चिकित्सा संबंधी सुविधाओं की प्रत्यक्षतः वृद्धि हुई है, यद्यपि अभी इस दिशा

में बहुत कुछ करना बाकी है। सबसे ज्यादा कांग्रेस के नेतृत्व ने हमारे इस नवजात जनतंत्र को एक ऐसे समय एक टिकाऊ और प्रगतिशल सरकार प्रदान की है जब कि एशिया और योरोप के अन्य बहुत से देश, थोड़े या बहुत, डांवाडोल हो रहे हैं। हमारे महान प्रधान मंत्री को धन्य है कि संसार में शांति और मानव जाति में सद्भावना स्थापित करने के दुष्कर किन्तु शुभ कार्य में एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा कर भारत ने अंतर्राष्ट्रीय मामलों में बहुत ऊंची इज्जत पाई है।

भारत ने राष्ट्रपिता के उपदेशों के अनुसार एक नया सामाजिक और आर्थिक ढांचा बनाने के लिए शांति और जनतंत्रवाद का रास्ता चुना है। भारत ने युद्ध, तानाशाही और जनता के सैन्यीकरण के रास्ते का निश्चिप रूप से बहिष्कार कर दिया है। यह सोचना गलत है कि अधिनायकवाद के तरीके जनतंत्रवाद और जनता की शिक्षा के तरीके की निस्बत ज्यादा जल्दी काम करनेवाले और ज्यादा टिकाऊ हैं। जो कुछ भारत ने गत सात वर्षों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में कर दिखाया है वह इस समय संसार के किसी देश की प्रगति के साथ बराबरी कर सकता है। हमें यह न भूलना चाहिए कि रूस को १९१७ की क्रांति के बाद १९२८ में पहली पंचवर्षीय योजना तैयार करने में पूरे ग्यारह साल लगे थे। प्रथम पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के बाद भी पुरानी अर्थ-व्यवस्था से नई व्यवस्था का संक्रमण आसान न था। अक्तूबर क्रांति के तुरन्त बाद ही रूस को साम्राज्यवादी स्वार्थों से ज़ोरदार मुकाबला करना पड़ा था और समाजवादी व्यवस्था के फल दृष्टिगोचर होने से पूर्व लगभग दस साल तक देश अराजकता, अव्यवस्था, रक्तपात और अकाल से ग्रस्त रहा। चीन में भी जादू से कुछ नहीं हुआ है और असलियत इतनी चमत्कारपूर्ण नहीं है जितनी कि दूर से नजर आती है। न वहां के भूमि-सुधार इतने क्रांतिकारी हैं जैसे कि, शायद, बताए जाते हैं। जो लोग पिछले कुछ महीनों में चीन गए हैं और जिन्होंने राजनीतिक पक्षपात बिना वास्तविक स्थिति का अध्ययन करना चाहा है, उनका मत है कि चीन को भारत के वर्तमान स्तर पर आने में अभी कम-से-कम दस साल और लगेंगे। चीन हमारा पड़ोसी मित्र है और एक विशेष क्षेत्र में उससे सीखने में के लिए हम सदा तत्पर हैं। लेकिन हम सबको यह जान लेना चाहिए कि भारत ने आजादी के बाद बहुत कुछ किया है और किसी भी प्रकार की निराशा या उदासीनता के लिए कोई सबब नहीं है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हम अभिमानी और अकर्मण्य बन जायं और हाथ पर हाथ धरकर बैठ जायं। निरन्तर जागरूकता और कठिन परिश्रम स्थायी स्वतन्त्रता का मूल्य है और हमें व अत्यधिक आशावादी आत्मविश्वासी नहीं

बनना चाहिए। जैसा कि श्री नेहरू ने विभिन्न प्रदेश कांग्रेस कमेटियों के अध्यक्षों को हाल में लिखा है, "हमें अपन सामने एक संतुलित तस्वीर रखनी चाहिये; न हमें अपनी सफलताओं को बढ़ाना चाहिए, न घटाना चाहिए और हमेशा यह याद रखना चाहिये कि अभी हमें और क्या करना है ?" हमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं कि भारत के सामने और हमारे प्रधान मंत्री के सामने एक उज्ज्वल भविष्य है। महात्मा गांधी के उपदेशों को सदा स्मरण रखते हुए हमें एक नए, समृद्धिशील और गौरवमय भारत के निर्माण के लिए अथक परिश्रम करना चाहिए। सब लोगों के प्रति सद्भावना और किसी के प्रति भी दुर्भावना न रख कर अपने भावी कार्य में आस्था और विश्वास तथा अनुशासन और दृढ़ता के साथ हमें ऐसे वर्गविहीन एवं जातिविहीन समाज के अपने मनोवांच्छित ध्येय की ओर अग्रसर होना चाहिए जिसमें व्यष्टि और समष्टि दोनों को पूर्ण एवं स्वतंत्र विकास का पर्याप्त अवसर प्राप्त हो।

१५ अगस्त, १९५४

पूजा के नये देवालय

अत्यन्त प्रसन्नता और जोश के वातावरण में भाखड़ा-नांगल नहरों का उद्घाटन करते समय प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने भावना के साथ इन योजनाओं को प्रत्यक्ष नज़र आनेवाले "पूजा के मन्दिर और देवालय" कहकर पुकारा है, जहां अपने लाखों साथियों के फायदे के लिए हजारों आदमी बड़े भारी रचनात्मक कार्यक्रम में लगे हुए हैं। प्रधान मंत्री न कहा : "ये एक पवित्र स्थान हैं, जहां लोग अपना खून पसीना बहाते हैं और आम लोगों के कल्याण के लिए कष्ट उठाते और तकलीफ सहते हैं।" "ये स्थान सबसे उत्तम मन्दिर, गुरुद्वारे, गिरजे और मस्जिदें हैं, और जब मैं इन योजनाओं को देखता हूं तो मेरे मन में धर्म की भावना अधिक उत्पन्न होती है।" हमारे पूज्य नेता के मुख से निकले इन सुन्दर और जोशीले शब्दों से जनता में नये जोश की एक लहर-सी दौड़ गयी और एक नये, संपन्न और प्रगतिशील भारत के निर्माण का उनका निश्चय और भी दृढ़ हो गया। थामस कार्लाइल का कहना है : "कर्तव्य पूर्ति ही पूजा है।" यही विचार युगों-युगों से भारत की संस्कृति और आचार-विचार में ओतप्रोत रहा है। गीता में कहा गया है कि जो बिना काम किये खाता है वह चोर है। गुरुदेव टैगोर ने लोगों से कहा था कि वे भगवान् की पूजा के लिए "भजन और माला को मन्दिर के एक कोने में छोड़ दें।" "भगवान वहां रहता है जहां किसान अपनी सख्त जमीन पर हल चलाता है और जहां सड़क बनाने वाला मजदूर पत्थर तोड़ता है। भगवान धूप और बारिश में उनका साथ देता है, और उसके कपड़े धूलधूसरित हैं।"

इसलिए भारत के पुनर्निर्माण का महान् कार्य वास्तव में एक उच्च और धार्मिक कार्य है और देश के विभिन्न भागों में जो बहुत-सी छोटी और बड़ी योजनाएं कार्यान्वित हो रही हैं और जिनसे जनता का सदा के लिए कल्याण होने की संभावना है, वे "पूजा के नये मन्दिर हैं।" इनसे हम सब को नया उत्साह मिल सकता है। भाखड़ा-नांगल योजना को ही लीजिए। यह भारत की सबसे बड़ी बहुप्रयोजन नदी घाटी योजना है। इसका खर्च बहुत अधिक, यानी १५३ करोड़ रुपये है, लेकिन इसके फायदे भी बड़े भारी होने वाले हैं। इससे पंजाब, पेप्सू और राजस्थान में लगभग ६० करोड़ एकड़ अतिरिक्त भूमि की सिंचाई होगी। इन सिंचाई की सुविधाओं के फलस्वरूप यह आशा है कि खेती से लगभग १३२ करोड़ रुपये सालाना की अतिरिक्त पैदावार होगी। केवल एक सिंचाई-कर से राज्यकोष को हर साल ३ करोड़ से अधिक का लाभ

होगा और जो भूमि काश्त की जायगी उससे किसानों के तीस लाख से भी अधिक कुटुम्बों को रोज़गार मिलेगा। उद्योगों और कृषि के विकास के लिए हमारे शक्ति-साधनों में लगभग तीन अरब किलोवाट के बराबर बिजली की शक्ति बढ़ जायगी। कुल ११.३ लाख टन वार्षिक खाद्यान्न, ५ लाख टन चीनी और कपास की ८ लाख गांठें पैदा होंगी। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए इस देश के लिए ये आंकड़े वास्तव में बड़े प्रभावी हैं। इसमें कोई शक नहीं कि ये बहुप्रयोजन नदी-घाटी योजनाएं भविष्य में हमारे आर्थिक विकास की स्थायी और मज़बूत नींव बनेंगी। इन बड़ी योजनाओं के अलावा आज भारत में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के विकास के लिए बहुत-सी छोटी-छोटी योजनाएं भी चल रही हैं। यद्यपि सामुदायिक विकास योजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार सेवा को कुछ प्रारम्भिक कमियों और कठिनाइयों से मुक्त नहीं कहा जा सकता, तो भी वे हमारे सपनों का नया भारत बनाने के लिए साहसिक उपक्रम हैं।

परन्तु दो एक ऐसी बातें हैं जिनकी ओर हम योजना आयोग और भारत सरकार का ध्यान दिलाना चाहेंगे। हमारे शक्ति और सिंचाई के प्राकृतिक साधनों में इजाफा करना यकीनन बड़ी अच्छी बात है। परन्तु वे एक साध्य के लिए केवल साधनमात्र हैं। निस्संदेह, हमारे सारे राष्ट्रीय आयोजन का प्रमुख ध्येय यह है कि अधिक रोज़गार यकीनी बना दिया जाए और इस देश से भूख और गरीबी का बहिष्कार कर दिया जाए। इसको प्राप्त करने का ठीक-ठीक केवल यही तरीका है कि गहरी और वैज्ञानिक ढंग से खेती की जाये और छोटे पैमाने के, घरेलू और ग्रामोद्योगों का जाल बिछा दिया जाए। जैसा स्वाभाविक ही है, हमारे कुंजी या मूल उद्योगों का बड़े पैमाने पर निर्माण करने की आवश्यकता का कोई विरोधी नहीं है, परन्तु उपभोग की वस्तुएं बनाने वाले उद्योगों की व्यवस्था विकेंद्रित सहकारी समितियों के रूप में छोटे पैमाने पर ही होनी चाहिए। यह वास्तव में बड़ी प्रसन्नता की बात है कि पिछले कुछ सालों में हमारे देश में कृषि-क्षेत्र में बड़ी भारी प्रगति हुई है। अब हम खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर हो गये हैं और चावल पर से भी पूर्णतया नियंत्रण हटा लिया गया है। इसके लिए हम केंद्रीय खाद्यमंत्री के दृढ़ निश्चय की प्रशंसा करते हैं। परन्तु हमारे देहात में छोटे किसानों को नुकसान पहुंचा कर बड़े पैमाने पर और यांत्रिक ढंग से खेती करने के लिए फार्म बनाने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति से हम बहुत खुश नहीं हैं। हमें यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि हमारी मूल समस्या पूर्ण रोजगार प्राप्त करना तथा उत्पादन बढ़ाना है। अतः भारत को भी चाहिए कि वह चीन और जापान की तरह सहकारी ढंग से छोटे पैमाने पर घनी खेती के तरीके का निर्माण करने की कोशिश करे ताकि कम खर्च के साथ लोगों को

आराजियों पर बसाना संभव हो सके और साथ ही सिंचाई, खाद डालने और फसलों को अदल-बदल कर बोने इत्यादि के अधिक वैज्ञानिक तरीकों से खेती की पैदावार काफी बढ़ सके। यदि इस बात की ओर अधिक ध्यान नहीं देते और कुछ धनवान किसानों को बहुत बड़े अत्यंत यांत्रिक तरीके से फार्म बनाने की इजाजत दे देते हैं तो कृषि के क्षेत्र में पंजीवाद की बुराइयां लाने की जिम्मेवारी हम पर होगी; और संभव है कि शानदार नदी-घाटी योजनाएं "पूजा के नये मंदिर" बनने की बजाय जनता के और अधिक आर्थिक शोषण का कारण बन जायें।

जहां तक बिजली की बढ़ती हुई शक्ति का प्रयोग करने का प्रश्न है, हम योजना आयोग को एक सुझाव देना चाहेंगे कि इस शक्ति को बड़े पैमाने के, छोटे पैमाने के और ग्रामोद्योगों में न्यायपूर्ण ढंग से बांट देना चाहिए। जहां तक हमें पता है, अभी तक राज्य सरकारों ने इन योजनाओं द्वारा उत्पादित बिजली की शक्ति को इस ढंग से प्रयोग में लाने की योजना नहीं बनाई है। ऐसी भी कुछ मिसालें हैं जहां बड़ी फेक्टरियों को, जिनको कि पहले ही बिजली मिल रही है, यह नयी शक्ति दी जा रही है, क्योंकि यह सस्ती है। सस्ती बिजली मिलने से उपभोग की वस्तुएं बनाने वाले इनमें से कुछ बड़े उद्योग अधिक शक्ति के साथ अपने सहवर्ती ग्राम और कुटीर उद्योगों का मुकाबला कर सकेंगे। निश्चय ही मूल उद्योगोंको सस्ती बिजली देना देशमें अधिक औद्योगीकरण के लिए लाभदायक होगा,परन्तु हमारी नई योजनाओं द्वारा उत्पादित अधिक शक्ति का ठीक ढंग से प्रयोग करने के लिए सरकार को छोटे पैमाने के और ग्रामीण उद्योगों की आवश्यकताओं को सदा धयान में रखना है। जब तक कम ब्याज पर ऋण और सस्ती बिजली दे कर तथा सहकारी आधार पर हाट-व्यवस्था करके हम अपने ग्राम और कुटीर-उद्योगों को विकसित होने में मदद नहीं करते तब तक इस देश में, जहां पूंजी कम है और श्रम अत्यधिक है, पूर्ण रोज़गार और अधिक उत्पादन के लिए आयोजन करना असंभव होगा। इसलिए हमें पूर्ण आशा है कि योजना आयोग और सरकार समस्या के इस पहलू पर तुरन्त ध्यान देंगे और उन क्षेत्रों में, जहां नई बहुप्रयोजन नदी-घाटी योजनाएं चल रही हैं, छोटे पैमाने के और ग्राम उद्योगों में बिजली के उपभोग के लिए सहकारी संगठन स्थापित करने के वास्ते शीघ्र ही कदम उठायेंगे।

स्थानीय स्वशासन की इकाइयों के रूप में ग्राम पंचायतों को पुनर्जीवित करने के लिए इस देश में इस समय पूरी कोशिश हो रही है। सभी विकास कार्यक्रम, खास तौर पर ग्रामीण क्षत्रों में, स्वाभावतः इन पंचायतों और औद्योगिक सहकारी समितियों पर निर्भर होंगे। अतः जहां तक विद्युत् शक्ति और सिंचाई की सुविधाओं

का ताल्लुक है, यह आवश्यक है कि हमारी नदी घाटी योजनाओं को इन विकेंद्रित स्व-शासित संस्थाओं की मौलिक आवश्कताओं का ध्यान रखना चाहिए। संक्षेप में "पूजा के इन नये मन्दिरों" को भारत में प्राचीन ग्राम समुदाय पुनः स्थापित करने का साधन बनना चाहिए। इन समुदायों की पंच परमेश्वर के रूप में आम इज्जत होती है।

नांगल नहर का उद्घाटन करते समय प्रधान मंत्री ने उसे "भारतीय जनता के कल्याण के निमित्त" समर्पित किया। उन्होंने उन लोगों की सख्त निन्दा की जो भारत में हुई प्रगति की सदा बुराई करते हैं और दूसरे मुल्कों की प्रशंसा करते हैं। प्रधानमंत्री ने कहा: "मै नुक्ताचीनी या सरकार पर दोष थोपने की चिन्ता नहीं करता।" आगे उन्होंने जोशीले शब्दों में कहा, "भारतीय जनता की निन्दा करने और उसपर दोष थोपने की चिन्ता मुझे जरूर है।" गरीबी और अज्ञानता के बावजूद हमारी स्वतन्त्रता के पिछले सात वर्षों में भारत के लोगों ने चकाचौंध करने वाला उत्साह, बलवती व्यवहार-बुद्धि और कठिन परिश्रम का परिचय दिया है। उन पर गर्व करने के लिए हमारे पास पर्याप्त कारण है। जैसा श्री नेहरू ने कहा, "भारत के छत्तीस करोड़ लोग प्रगति-पथ पर हैं और यह कोई छोटी बात नहीं है।" भारत न स्थिर रह सकता है और न रहेगा। उसका निश्चित भविष्य है। देश के पुर्ननिर्माण के पवित्र कार्य में एक नई भावना और धार्मिक विश्वास को लेकर भारत की जनता आगे बढ़ेगी। हमें प्रधान मंत्री के इन अनुकरणीय शब्दों को हमेशा याद रखना चाहिए:

"हमने आजादी की जंग लड़ी है और उसको जीता। हम उसी क्रांति की संतान हैं। परन्तु वह क्रांति अभी खत्म नहीं हुई है। हम अभी भी उसे चलाते रहेंगे। राजनैतिक क्षेत्र में वह क्रांति पूरी हो चुकी है, लेकिन उसे सामाजिक और आथक क्षेत्रों में जारी रखना है।"

२४ जुलाई, १९५४

आर्थिक आयोजन और शिक्षा

स्वतन्त्रता के पिछले सात वर्षों में भारत ने राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में, निस्सन्देह उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। हमारे प्रधान मंत्री के उत्तम नेतृत्व को श्रेय है कि आज अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में हमने एक अपूर्व स्थान प्राप्त कर रखा है और विश्व में सामूहिक शान्ति व सुरक्षा कायम करने के लिए दोनों शक्ति-गुटों से बिल्कुल अलग रह कर भारत अपना रास्ता तय कर रहा है। घरेलू क्षेत्रों में भी हमारी सफलताएं काफी महत्त्व रखती हैं। कुदरती मुसीबतों और अनेक आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद भी हम प्रथम पंचवर्षीय योजना के तीन वर्षों में ही अपनी खाद्य समस्या बहुत-कुछ सुलझा पाए हैं। कई उद्योग अपने उत्पादन-लक्ष्यों पर अभी से पहुंच चुके हैं और सरकार की सक्रिय सहायता व उपक्रम से देश में बहुत से नए बुनियादी उद्योग भी पैदा हो गए हैं। छः सौ से ज्यादा रियासतों का भारतीय जनतन्त्र में एकीकरण कोई मामूली काम न था। करीब ५५,००० गांवों में सामुदायिक योजना व राष्ट्रीय विस्तार सेवा का प्रसार हो चुका है। आशा है कि अगले सात-आठ वर्षों में यह योजनाएं समूचे देश पर छा जाएंगी। हमने अगले पंचवर्षीय आयोजन की मूल-योजना पर काम शुरू कर रखा है और कृषि व उद्योग के विकास के लिए हमारा भविष्य अति उज्ज्वल और आशाजनक है।

किन्तु शिक्षा-क्षेत्र हमें एक अत्यन्त विरोधात्मक स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। एक ओर ऐसे हजारों नौजवान हैं जो अपने भरण-पोषण के लिए उपयुक्त काम पाने में असमर्थ हैं, और दूसरी ओर बहुत-सी ऐसी टेकनिकल नौकरियां हैं जो कि उपयुक्त और प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं के अभाव में खाली पड़ी हैं। उदाहरण के लिए, पंचवर्षीय योजना के कई काम अभी तक इसलिए नहीं उठाए जा सके क्योंकि खास कामों के लिए पर्याप्त मात्रा में प्रशिक्षित युवक नहीं मिल पा रहे। हमें मिकेनिक, सर्वेयर, ओवरसीयर, डाक्टर, खासतौर पर, गांवों के लिए, नर्स, स्टेनोग्राफर और अन्य प्रकार के प्रशिक्षित व अर्ध-प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं की बहुत सख्त जरूरत है। कई राज्य सरकारें सिंचाई की छोटी योजनाओं व सड़कों आदि के अपने स्थानीय कार्यों के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत धन का उपयोग टेकनिकल कार्यकर्त्ताओं के अभाव के कारण ही मुख्यत: नहीं कर पा रही हैं। अतः यह स्पष्ट है कि हमारी शैक्षणिक संस्थाओं और आर्थिक विकास की योजनाओं के बीच संयोजन का अभाव है। इन दोनों के बीच समन्वय तो है ही नहीं। एकीकरण

और समन्वय बिना शिक्षित युवकों को बेरोज़गारी की समस्या व संयोजित अर्थ-व्यवस्था के लिए प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता पाने की मुश्किल हल करना असंभव होगा। हमारी शिक्षा-पद्धति को अनेक रूपों में परिवर्तित करना और पोलिटेक-निकल (बहु-प्राविधिक) संस्थाओं को प्रोत्साहित करना अत्यन्त आवश्यक है। जनता और राज्य द्वारा विशुद्ध कला अथवा "उदार" पाठ्क्रमों को निरुत्साहित किया जाना चाहिए। वास्तव में, साधारण स्कूल कालेजों का और अधिक विस्तार फौरन रोक दिया जाना चाहिए।

भारत सरकार ने देश की भावी शिक्षा-पद्धति के रूप में बुनियादी तालीम अपनाने की नीति पहले से ही मान रखी है। काम करके ज्ञान पाना या उत्पादनात्मक अथवा सृजनात्मक कार्यों द्वारा विभिन्न शास्त्रीय विषयों की शिक्षा प्रदान करना वह सुप्रसिद्ध शैक्षणिक सिद्धान्त है जो कि महात्मा गांधी द्वारा आरंभ की हुई बुनियादी तालीम का सार है। बुनियादी तालीम पढ़ाना और दस्तकारी सिखाना नहीं बल्कि काम द्वारा सिखाना-पढ़ाना है। संक्षेप में भाषा, अंकगणित, पदार्थ व समाज शास्त्र, इतिहास और भूगोल जैसे विभिन्न विषयों की शिक्षा के लिए "परस्पर संबंध" की एक प्रविधि द्वारा हाथ की कताई-बुनाई, बढ़ईगीरी, लोहारगीरी आदि जैसी विभिन्न प्रक्रियाओं का लाभ उठाया जाता है। हमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि शिक्षा पद्धति के साथ विकास-योजनाओं के एकीकरण की हमारी मूलभूत समस्या का इस तरह की बुनियादी तालीम ही एकमात्र व्यावहारिक समाधान है। भारत की आर्थिक योजनाओं से संबंधित विशिष्ट कार्यों के लिए, शहरों और गांवों में, बुनियादी स्कूल हमारे युवकों को प्रशिक्षित करने में निश्चय ही सफल होंगे। "बाबू" पैदा करने के बजाय, जैसा कि मौजूदा स्कूल-कालेजों में किया जा रहा है, वे ऐसे उत्साहित युवक युवतियां पैदा करेंगे जो कि नए भारत के निर्माण-कार्य का भार गंभीरता के साथ वहन कर सकेंगे। क्लर्की के लिए दर-दर भटकने के बजाय, बुनियादी स्कूलों के छात्र कठिन परिश्रम, व्यावहारिक कार्य और अपनी मदद खुद करने की भावना द्वारा अपना भविष्य स्वयं निर्मित करने में समर्थ होंगे।

हर राज्य में केवल थोड़े से प्रायोगिक बुनियादी स्कूल खोल देने से कोई लाभ नहीं। प्रयोग का वक्त अब खत्म हो चुका। जरूरी यह है कि सब मौजूदा प्राइमरी और सेकेन्डरी स्कूलों को अविलम्ब बुनियादी स्कूलों में बदल दिया जाय। यूनि-वर्सिटियों की शिक्षा में भी आमूल परिवर्तन होना आवश्यक है। पर, अगर बुनियादी स्कूलों से निकलने वाले छात्र कालेज और यूनिवर्सिटी में शिक्षा पाने चाहते हैं तो उन्हें किसी तरह की रुकावट नहीं होनी चाहिए। बास्तब में उन्हें विशेष सुबिधाएं

और प्रोत्साहन मिलना चाहिये। स्कूलों के पाठ्यक्रमों में अंग्रेजी भाषा का स्थान इस संयोजित रूप से रखना चाहिए ताकि बुनियादी स्कूलों के छात्र अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान न होने से परिवर्तन काल में किसी प्रकार की रुकावट महसूस न करें। हम अंग्रेजी भाषा के विरोधी नहीं हैं। यदि यह दुनिया की सबसे महत्त्वपूर्ण भाषा नहीं तो भी सबसे महत्वपूर्ण भाषाओं में एक अवश्य है। लेकिन कोई कारण नहीं कि यह हमारे राष्ट्रीय जीवन में और खासतौर से हमारी शिक्षा-पद्धति में भारतीय भाषाओं का न्यायोचित स्थान बलात् ग्रहण करे। हिन्दी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं को न केवल स्कूल-कालेजों में शिक्षा का माध्यम ही होना चाहिए बल्कि भारत की सब सरकारी नौकरियों की परीक्षाओं का भी माध्यम बनना चाहिए। अंग्रेज़ी या अन्य कोई विदेशी भाषा तो हमारे नवयुवकों को अपनी शिक्षा के एक आवश्यक अंग के रूप में सीखनी ही चाहिए। लेकिन अंग्रेजी का वह अस्वाभाविक स्थान जो आज हमारे सामाजिक और शैक्षणिक जीवन में है निश्चय ही समाप्त हो जाना चाहिए।

यह सोचना बहुत गलत है कि मामूली किताबी तालीम से बुनियादी तालीम ज्यादा महंगी है क्योंकि बुनियादी स्कूलों में दस्तकारी सिखाने का प्रबन्ध करना पड़ता है। आचार्य विनोबा ने अभी हाल में स्पष्ट कहा है कि बुनियादी संस्थाओं में दस्तकारी के प्रबन्ध के लिए कोई खास रुपया खर्च करना जरूरी नहीं। उनका निश्चित मत है कि बुनियादी स्कूलों की शिक्षा और परस्पर संबंध के लिए गांवों या शहरों की कला और कारीगरी का उपयोग किया जाना चाहिए। इस प्रकार, छात्रों को सिखाई जाने वाली दस्तकारी में सदा विभिन्नता बनी रहेगी और बुनियादी स्कूलों के साथ अतिरिक्त कारखाने जोड़ने की भी जरूरत न होगी। यदि इस सिद्धान्त का सही तरीके से और बुद्धिमानी के साथ अनुसरण किया जाय तो अतिरिक्त सार्वजनिक व्यय किए बिना ही बुनियादी तालीम का शीघ्र प्रसार होसकता है। इसके अलावा, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बुनियादी तालीम सिर्फ गांवों के लिए ही नहीं है। यह एक नई शिक्षा पद्धति है जो एक साथ गांवों और शहरों दोनों में प्रचलित की जा सकती है। अगर दस्तकारी सिर्फ गांवों में ही शुरू की गई तो जनता में हीन-भाव आ जायगा और वह शहरी लोगों की नीयत पर शक करने लगेगी। इस तरह की गलती मद्रास राज्य में हो चुकी है और अब उसे दोहराना ठीक नहीं।

एक और सुझाव है जिसपर योजना कमीशन और भारत सरकार को गौर करना चाहिए। कई शिक्षा-शास्त्रियों की सिफारिश है कि भारत के प्रत्येक छात्र को डिग्री हासिल करने से पहले कुछ महीने तक अनिवार्य रूप से सामाजिक सेवा करनी

चाहिए। निश्चय ही यह सामाजिक और शारीरिक श्रम विकास-योजनाओं में उपयुक्त स्थान पाने के लिए उसके काम आएगी। अब वह समय आ गया है जब सामाजिक सैन्यीकरण पर पूरी तरह से गौर कर एक ऐसी व्यावहारिक योजना बनाई जाय जिसे तुरन्त कार्यान्वित किया जा सके। भारत ने जनवादी जीवन से गंठजोड़ा किया है, हमारा आर्थिक आयोजन भी जनवादी ढांचे पर आधारित है। सीमित वित्तीय साधनों और दोनों शक्ति-गुटों के बीच पूर्ण तटस्थता की नीति के साथ भारत के लिए केवल यही एक यथार्थवादी रास्ता है कि देश के पुनर्निर्माण के लिए वह मानव-श्रम के अपने असीम साधनों को जुटा दे। शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन कर और समस्त वर्त्तमान शिक्षा संस्थाओं में शारीरिक व समाजिक कार्य अनिवार्य बना कर हम, कम से कम, इस परिवर्तन-काल में, अपने इस प्राचीन देश को एक नया रूप प्रदान करने में अपने मानव-साधनों का उपयोग कर सकते हैं। राष्ट्रीय आर्थिक-आयोजन के लिए एक स्वस्थ शिक्षा-प्रणाली सर्वोच्च महत्त्व रखती है और जितनी जल्द हम इस काम को कर सकें उतना ही अच्छा है। हम बहुत आम बातचीत और कोरे इरादे कर चुके हैं। शिक्षा-पद्धति का बदला जाना निहायत ज़रूरी समझ कर अब हमें इस काम में जी-जान से जुट जाना चाहिए।

७ अक्तूबर, १९५४

मिल-कारखाने, हाथ-करघे और खादी

वस्त्र उद्योग जांच कमेटी की बहु-प्रतीक्षित रिपोर्ट अब प्रकाशित हो चुकी है। रिपोर्ट की मुख्य बात यह है कि मिल उद्योग के बुनाई संबंधी पहलू का अब और अधिक विस्तार न किया जायगा। आशा है १९६० तक प्रति व्यक्ति १८ गज़ के हिसाब से सारे देश के लिए ७२ अरब गज सूती कपड़े की आवश्यकता होगी। निर्यात के लिए १० अरब गज निकाल कर, अतिरिक्त १६ अरब गज कपड़ा देश की घरेलू आवश्यकता-पूर्ति के लिए चाहिए। देश में रोज़गारी कायम रखने और "पूंजी की मांग की बचत करने के लिए "कमेटी का सुझाव है कि "यह अतिरिक्त उत्पादन कपड़ा उद्योग के विकेन्द्रित रूप द्वारा उपलब्ध किया जाय। हाथकरघा उद्योग का नवीकरण करने के लिए कमेटी का मत है कि हाथ-करघों को क्रमशः बिजली-करघों में बदल दिया जाना चाहिए। अन्त में, "१५ से २० वर्ष बाद, पेचीदा डिजाइन के खास कपड़े बनाने वाले ५०,००० हाथ-करघों के अलावा, सारा करघा उद्योग उन्नत (अर्ध-यंत्रचालित) हाथ-करघों अथवा विकेन्द्रित बिजली-करघों के रूप में परिणत हो जायगा।" अनुमान है कि इस परिणति के फलस्वरूप प्रति वर्ष २०,००० मज़दूर विस्थापित होंगे। १९६० तक प्रति वर्ष अतिरिक्त १६ अरब गज कपड़ा बनाने के लिए बेहतर किस्म के बिजली-करघों की जरूरत होगी, जिसके लिए कमेटी की सिफारिश है कि प्रति २०,००० तकलों के ८८ एक अथवा प्रति ५०,००० तकलों के ३५ एकक स्थापित कर १०.७५ लाख अतिरिक्त तकले बनाये जायं। कमेटी का यह भी सुझाव है कि अभी हाल में गुंटाकल में शुरू की गई मिल की किस्म की कुछ "सहकारी कताई की मिलें" भी स्थापित की जायं। कमेटी का निश्चित मत है कि रंगीन साड़ियां बनाने का काम हाथ-करघों को ही देना "पूर्णतः न्यायोचित प्रतीत होता है", न केवल प्राविधिक दृष्टि से बल्कि इस उद्योग के "कमज़ोर पहलू को जिन्दा रखने के लिए" भी। मिल के कपड़ों पर भारी उत्पादन-कर अथवा उपकर लगाकर मिल और हाथ-करघे के कपड़ों की दरों में समता लाने के सुझाव पर कमेटी का दृढ़ मत है कि "यह तरीका संभव नहीं है।" किन्तु, कमेटी इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि "हाथ-करघा (अथवा उन्नत हाथ-करघा) और घरेलू बिजली-करघा उद्योगों को दी जाने वाली मौजूदा सुरक्षाएं फिलहाल कायम रहनी चाहिएं।" कमेटी ने यह भी कहा है कि "हाथ-करघों द्वारा मलमल, वायल जैसे सादा कपड़ों के उत्पादन पर कोई रोकथाम नहीं लगानी चाहिए।"

कपड़ा मिल उद्योग के बारे में कमेटी का मत है कि सादा करघों को स्वतः चालित करघों में ५०,००० प्रति वर्ष के हिसाब से बदला जाय" ताकि मौजूदा करघों के आधे करघे बीस वर्ष में स्वचालित करघों में बदले जा सकें।" कमेटी ने हिसाब लगाया है कि यदि एक जुलाहा औसतन १६ स्वतःचालित करघों को चलाता है तो इस तबदीली के फलस्वरूप प्रति वर्ष ४,००० जुलाहे बेरोजगार हो जाएंगे। कमेटी की यह भी सिफ़ारिश है कि करीब ५० अरब गज मिल का कपड़ा रोक लिया जाय और "रिपोर्ट में बताए गए योजनाकाल में सादा या स्व-चालित करघों के रूप में किसी भी प्रकार की अतिरिक्त बुनाई की मशीनें न ली जायं।" कमेटी ने "कताई की मिलों और हाथ-करघा उद्योग के एकीकरण" का सुझाव भी रखा है। इस उद्योग के कताई संबंधी भाग के विकेन्द्रीकरण के बारे में कमेटी का ख्याल है कि "इस विषय पर विचार व्यक्त करने से पूर्व छोटे पैमाने की कताई एककों के आविष्कारों को प्राविधिक दृष्टि से अभी और उन्नत होना पड़ेगा।" फिलहाल, कमेटी की राय है कि "स्थान और पर्याप्त रूप से लाभकर छोटे एककों की दृष्टि से विकेन्द्रीकरण के आधार पर नए कताई के एकक बनाए जायं।" खादी के संबंध में कमेटी महसूस करती है कि वह "उचित सुझाव पेश नहीं कर सकती" और उसका ख्याल है कि इस बारे में एक विशेष कमेटी बनाई जाय। रिपोर्ट के अंतिम भाग में कमेटी ने कहा है कि "निर्माण-काल के आरम्भिक बलिदान के बाद किसी को भी आर्थिक अथवा अन्य आवश्यकताओं से बाध्य होकर अपनी रोजी कमाने के लिए अपने समय का अधिकांश भाग खर्च न करना पड़ेगा।" "इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए," रिपोर्ट में कहा गया है कि "आरम्भिक काल के बाद कम से कम समय में अधिक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करना होगा।" "यह बिजली और मशीनों के प्रयोग से ही हो सकता है। अंत में, हाथ-करघों का बिजली-करघों में बदला जाना अनिवार्य है।" रिपोर्ट के अंत में कहा गया है कि "जनतन्त्रवाद के उच्चतम सिद्धान्तों के अनुसार जीवनयापन करने के लिए सहकारिता के आधार पर विकेन्द्रित उद्योग ही सर्वोत्तम आश्वासन है।"

वस्त्र उद्योग जांच कमेटी की यह रिपोर्ट संतोषप्रद और साथ ही निराशाप्रद भी है। यह जानना संतोषप्रद है कि कपड़ा मिलोंके बुनाई संबंधी पहलू का और अधिक विस्तार न किया जायगा। यह भी अच्छा ही है कि हाथ-करघा उद्योग की उत्पादन-क्षेत्र संबंधी मौजूदा सुरक्षाएं कायम रखी जाएंगी और १८ गज प्रति व्यक्ति के हिसाब से अतिरिक्त उत्पादन विकेन्द्रित क्षेत्र को सौंपा जायगा। हाथ-करघा और मिल के उत्पादन के नवीकरण के संबंध में कमेटी ने १५ से २० वर्ष की अवधि में एक "समयबद्ध रूपांतरण योजना" प्रतिपादित की है "ताकि रोज़गारी बनी रहे और

अचानक बड़े पैमाने पर सामाजिक व आर्थिक उथल-पुथल न हो सके।" लेकिन रिपोर्ट इस अर्थ में निराशाप्रद है कि इस समूची समस्या का निर्भीकता व यथार्थवादी रूप से मुकाबला करने में कमेटी असफल रही है। पंचवर्षीय योजना की सबसे हाल की प्रगति रिपोर्ट साफ तौर पर बताती है कि देश में बेरोजगारी की समस्या बहुत ज्यादा गंभीर बन चुकी है, और स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती ही जा रही है। तात्कालिक आवश्यकता है भारत के अधिकाधिक लोगों को लाभकर रोजगारी दिलाना। सूती कपड़ा उद्योग हमारे संगठित उद्योगों में प्रमुख है क्योंकि वह जीवन की एक ऐसी आवश्यक वस्तु उत्पादित करता है जिसकी सार्वजनिक मांग है। हमें आशा थी कि कमेटी एक ऐसी योजना पेश करेगी जिससे हाथ-करघा और खादी के अधिक उन्नत और अधिक व्यापक संगठन द्वारा इस उद्योग में अधिक लोग काम पा सकेंगे। इसके विपरीत, कमेटी के मतानुसार, प्रतिवर्ष लगभग २४,००० मजदूर विस्थापित होंगे और वह भी छः वर्ष में जनता के ५० करोड़ रु. के खर्च पर। कमेटी के मतानुसार देश में केवल १२ लाख सक्रिय हाथ-करघे हैं। हमें इस आंकड़े के सही होने पर कुछ संदेह है। कमेटी का यह भी मत है कि हाथ-करघा उद्योग का और अधिक विस्तार वांछनीय नहीं है। बल्कि, अधिक उत्पादन की मांग हाथ-करघों को बिजली-करघों में बदल कर पूरी की जानी चाहिए। हमें यह भी आशा थी कि कमेटी हाथ की कताई और खादी की समस्याओं पर विशिष्ट रूप से विचार करेगी ताकि गांवों और शहरों दोनों में पूरी रोज़गारी न मिल सकने के सवाल को हल करने का रास्ता मिल सकेगा। लेकिन कमेटी ने ४० पृष्ठ की संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार करने में २२ महीने लेकर खादी के लिए एक अन्य कमेटी नियुक्त करने भर की सिफारिश करते हुए कहा है कि "गरीब लोगों के कुछ विशेष वर्गों के लिए अस्थायी रूप से रोजगारी कायम रखने के लिए हाथ-कताई उद्योग बनाए रखना आवश्यक है।" इस सिफ़ारिश ने जले पर नमक का काम किया है।

यह न भूलना चाहिए कि आज जो समस्या हमारे देश के सामने है वह वस्तुतः मानव-समस्या है। भारत के प्रत्येक समर्थ नागरिक को उत्पादनशील कार्य द्वारा जीविकोपार्जन का जन्मज अधिकार है। हमारे संविधान ने भी इस मूल अधिकार की प्रत्याभूति की है। पूर्व और पश्चिम के सब प्रगतिशील देशों में समस्त नागरिकों को लाभकर रोजगारी दिलाना राज्य अपना पुण्य कर्तव्य समझता है, और यदि वह ऐसा करने में असमर्थ है तो बेरोजगार लोगों को माहवारी भत्ता देता है। निश्चय ही 'दान' देने की अपेक्षा काम देना ज्यादा अच्छा है। जो काम किए बिना पेट भरता है वह न केवल नैतिक बल्कि शारीरिक और मानसिक पतन का शिकार बनता है। आधुनिक आर्थिक आयोजन का मूलउद्देश्य ही पूरी रोजगारी

पैदा करना है। अतः हमारे संयोजकों का कर्तव्य है कि वे हमारे आर्थिक और औद्योगिक ढांचे का इस प्रकार पुनर्गठन करें कि जिससे अधिकाधिक लोगों को बड़े पैमाने, छोटे पैमाने, ग्राम व कुटीर-उद्योगों में काम मिल सके। हम नवीकरण के विरोधी नहीं हैं। किन्तु नवीकरण, देश की विशेष परिस्थितियों को देखते हुए, सुसंगत होना चाहिए। इस दृष्टिकोण से, इस महान प्रायद्वीप की जनता को पूरी रोजगारी दिलाने की अधिक बड़ी पीठिका पर समूची समस्या को देखने में, कमेटी असफल रही है। जैसा कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अजमेर अधिवेशन में कहा गया था, औद्योगीकरण का लक्ष्य अधिकतम उत्पादन, पूरी रोजगारी और सामाजिक व आर्थिक न्याय होना चाहिए। यदि हम इस मूल उद्देश्य को भूल जाते हैं तो हमारी योजना बेमतलब का शोर साबित होगी।

२२ अक्तूबर, १९५४

प्रथम और अंतिम

अभी कुछ दिनों पहले संसद् में भूमि-सुधार, उद्योगों का नवीकरण और बाढ़-नियंत्रण जैसी कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक समस्याओं पर विचार-विनिमय हुआ था। सिंचाई, बिजली व योजना के केन्द्रीय मंत्री श्री गुलजारी लाल नन्दा ने संसद् के सदस्यों को आश्वासन दिलाया कि सरकार भूमि-सुधारों को "देश की प्रगति की एक महत्वपूर्ण कसौटी" समझती है। श्री नन्दा ने यह भी घोषणा की कि सरकार ने "बाढ़ों को युद्धकालीन संकट मान कर उनका मुकाबला करना" तय किया है। उद्योग के नवीकरण संबंधी वादविवाद का उत्तर देते हुए व्यापार व उद्योग के केन्द्रीय मंत्री श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने "आंसुओं बिना नवीकरण" की गुजारिश की। उन्होंने आश्वासन दिलाया कि विस्थापित श्रमिक को निराश्रित नहीं रहने दिया जायगा और नवीकृत उद्योगों से रुपया वसूल कर बनाए गए एक कोष द्वारा सरकार उसकी मदद करने की कोशिश करेगी। "इस प्रक्रिया के दौरान में हमें यह देखना होगा", श्री कृष्णमाचारी ने कहा, "कि जिन लोगों को सबसे ज्यादा तकलीफ पहुंचने की संभावना है और जो तकलीफ बर्दाश्त करने में सबसे कम काबिल हैं उन्हें सबसे कम तकलीफ पहुंचनी चाहिए और इस काम को व्यवस्थित रूप से किया जाना चाहिए।"

यह सच है कि भूमि-सुधार, बाढ़-नियंत्रण और उद्योगों का नवीकरण पेचीदा और मुश्किल मसले हैं जिन्हें बहुत काफी होशियारी, दूरंदेशी और सुव्यवस्थित रीति से हल करना होगा। किन्तु इस प्रकार के प्रश्न, स्वभावतः जटिल होते हुए भी तुलनात्मक दृष्टि से सुगम बन सकते हैं यदि हमारे मानसिक चक्षु के सम्मुख लक्ष्य स्पष्ट हो। ऐसे पेचीदे मसलों के लिए महात्मा गांधी ने हमें एक तिलिस्म बख्शा था। "जब कभी संशय में पड़े हो या स्वार्थ तुम पर सवार हो तो निम्नलिखित परीक्षा लो : उस गरीब-से- गरीब और कमजोर-से-कमजोर आदमी की शक्ल याद करो जिसे कभी तुमने देखा हो, और अपने आप से पूछो कि जो कदम तुम उठाना चाहते हो वह उसके किसी काम आ सकता है या नहीं ? क्या उसे इससे कुछ लाभ पहुंचेगा ? .... दूसरे शब्दों में, क्या उससे भखों को, लाखों आध्यात्मिक भूखों को स्वराज्य मिल सकेगा ? और तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संशय और तुम्हारा स्वार्थ पसीजता जा रहा है।" राष्ट्रपिता के इन मकनातीसी शब्दों को हमें अति महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याएं सुलझाते समय अपने दिमाग के सामने

हमेशा रखना चाहिए। क्योंकि, आखिर, एक जनतन्त्रवादी राज्य का मुख्य उद्देश्य दलितों के स्तर को ऊपर उठाना, और शांतिपूर्ण साधनों द्वारा उन लोगों के स्तर को नीचे लाना है जिनके हाथों में आज राष्ट्र का धन केन्द्रित है। जब तक कि मौजूदा भारतीय समाज में सम्पत्ति, या फिर, दरिद्रता का पुनर्विभाजन न होगा तक तब एक नए और समृद्धिशील भारत का निर्माण भी असंभव है। सामाजिक और आर्थिक समता बिना कोरी राजनीतिक स्वतन्त्रता विशेष महत्व नहीं रखती।

उदाहरण के लिए, भूमि-सुधार के संबंध में हमारा मुख्य उद्देश्य असली काश्तकार के अधिकारों की सुरक्षा होना चाहिए। आरंभ से ही कांग्रेस की यह नीति रही है, जैसा कि कांग्रेस अध्यक्ष ने हाल में कहा है कि पट्टेदारों की बेशुमार बेदखली को भूमि-सुधार की हमारी नीति में कोई जगह नहीं मिल सकती। हम प्रायः सभी राज्यों में भूमि पर आधारित मध्यस्थों का उन्मूलन करने में सफल रहे हैं। लेकिन काश्तकार की पट्टेदारी की सुरक्षा संबंधी स्थिति अभी तक बहुत संतोषजनक नहीं है। एक निश्चित समय तक लगान अदा न कर सकने वाले लोगों के अलावा और सब तरह की बेदखली को कानून से, या अगर जरूरी समझा जाय, तो कार्यपालक आदेश द्वारा रोका जाना भी वांछनीय है। मौजूदा आराजियों का अधिकतम क्षेत्रफल निर्धारित करना भी एक बहुत जरूरी सवाल है जिस पर सब राज्य प्रशासनों द्वारा गंभीरता के साथ विचार किया जाना चाहिए। असली सवाल हमारे उन लाखों करोड़ों देशवासियों को स्थायी और लाभप्रद रोजगार दिलाना है जो कि पचासों वर्षों से खेतों में खून-पसीना बहा कर जैसे-तैसे गुजर करने की कोशिश में लगे हुए हैं। जहां तक नवीकरण का संबंध है, असली सवाल फिर यही है कि हमारे उन लाखों करोड़ों देशवासियों को पूरा रोजगार दिया जाय जो कि पूरी तरह या साल में कई महीने बेकार रहने के लिए बाध्य हैं। हमने अपने जनतंत्र-वादी संविधान में भारत के समस्त स्वस्थ नागरिकों को काम करने के अधिकार की गारंटी दी है। ऐसे किसी भी कदम पर बहुत ज्यादा एहतियात के साथ ग़ौर करना चाहिए जो कि, चाहे केवल कुछ समय के लिए ही क्यों न हो, हमारी इस बुनियादी राष्ट्रीय नीति के खिलाफ जा रहा हो। नवीकरण के फलस्वरूप विस्थापित हुए श्रमिकों को काम देना ही काफी नहीं है। हमारी औद्योगिक नीति की असली कसौटी होनी चाहिए पूर्ण रोजगार, अधिकतम उत्पादन और सामाजिक-आर्थिक न्याय। जब तक हम राष्ट्रीय जीवन के सब पहलुओं में बेरोजगारी की समस्या का, अति आवश्यक समझ कर, मुकाबला न करेंगे, तबतक इस देश में एक स्वस्थ और स्थायी जनतंत्र कायम करना मुश्किल होगा। हमें अपनी नीतियां बनाते समय, खेत और कारखाने दोनों में ही, दीनतम श्रमिकों के हितों को, सर्वोच्च समझना

चाहिए। जब हम बाढ़-नियंत्रण की समस्या पर विचार करते हैं तो यह ठीक है कि हमें अल्पकालीन और दीर्घकालीन योजनाएं बनाने के लिए एकरूपता के साथ समस्त मसले पर गौर करना पड़ता है। लेकिन यहां भी तात्कालिक ध्यान देने के लिए हमें खास तौर पर उस दरिद्रतम ग्रामवासी का खयाल रखना चाहिए जो कि पूर्वी भारत की इस साल की बाढ़ों में अपना सब कुछ, अपनी जीविका का साधन तक गंवा बैठा है। दीनतम नागरिक भी दान पर जीवित नहीं रहना चाहता; वह अपने शरीर और अपनी आत्मा को बनाए रखने के लिए कुछ काम चाहता है और उसे काम देना हमारा सर्वप्रथम कर्तव्य है। बाढ़-नियंत्रण की दीर्घकालीन योजनाएं और नदियों को काबू में करना आगे की बातें हैं।

इसी प्रकार, अन्य कई ऐसे उदाहरण हैं कि हम उन लोगों या समाज के उन भागों का ख्याल नहीं करते जिनको सबसे पहले मदद चाहिए। हम देखते हैं कि शहरों में सड़कें चौड़ी की जा रही हैं और उनपर कोलतार बिछाया जा रहा है जबकि हज़ारों गांवों में पहुंचने के लिए अधपक्की या कच्ची सड़कें तक नहीं हैं। हम शहरों में पीने के पानी के प्रबंध की योजनाएं बनाते हैं जब कि गांवों में हमारे लाखों लोगों को अपने घरों के लिए पानी लाने हर रोज़ कई मीलों तक जाना पड़ता है। हम अपनी बड़ी-बड़ी नदी घाटी योजनाओं द्वारा काश्तकारों को सिंचाई की सुविधाएं प्रदान कर रहे हैं पर उन ग्रामीण श्रमिकों का क्या होगा जिनके पास जमीन ही नहीं है? राज्य सरकारें उद्योगों को सस्ती बिजली देने के लिए पानी द्वारा बिजली पैदा करने वाले स्टेशन बना रही है लेकिन हम बड़े उद्योगों को बिजली देने से पहले गांव के गरीब कारीगरों को बिजली देने का ख्याल नहीं कर रहे ? बिजली की रोशनी मंजूर करने में भी क्या हम पहले गांवों में रोशनी पहुंचाने की कोशिश कर रहे हैं ? सामुदायिक योजनाओं और ग्राम प्रसार सेवाओं में भी हमारी अधिकांश योजनाएं उन लोगों की मदद के लिए हैं जिनके पास राज्य से कर्ज लेने के लिए ज़मानत के तौर पर कोई जमीन जायदाद हो। लेकिन उनका क्या होगा जिनके पास न जमीन है और न जीवकोपार्जन का अन्य कोई साधन ? क्या हम सहकारिता के आधार पर कोई कुटीर या ग्रामोद्योग आरंभ कर उनकी मदद करने की कोशिश कर रहे हैं ? हां, इस प्रकार की कुछ योजनाएं जरूर हैं लेकिन उन्हें कार्यान्वित करने में फुर्ती की कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में निस्संदेह हरिजन सबसे अधिक पीड़ित हैं। अधिकांश राज्यों में उन्हें जमीन से निकाल बाहर किया गया है ; अधिकांश को नई जमीन नहीं मिली है यद्यपि उनके पुनर्वास के लिए कुछ योजनाएं बनी हैं। वे अभी तक गांव के कुओं से स्वच्छंदता और समादर के साथ पानी लेने में असमर्थ हैं। हरिजन विद्यार्थियों को कुछ छात्रवृत्ति देना या सरकारी नौकरी और सार्व-

जनिक संस्थाओं में उन्हें कुछ स्थान देना ही सिर्फ काफी नहीं है। हमें भारत के सुदूरतम कोने में उनके सामाजिक और आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाने की भरसक कोशिश करनी चाहिए। शहरों में हमें बड़ी रफ्तार के साथ शानदार नए मकान बनते नज़र आते हैं। लेकिन दिल्ली जैसे शहर तक में गंदे गली-कूंचे हम सब लोगों को, जो कि गांधी के इस देश में सर्वोदय समाज स्थापित करना चाहते हैं, मुंह उठाये निहार रहे हैं। हम बड़े उद्योगों के नवीकरण के इच्छुक हैं, पर क्या हमने अभी तक छोटे पैमाने के और कुटीर-उद्योगों की अत्यन्त ज़रूरी समस्याओं को सहानुभूति और समझदारी के साथ जानने की कोशिश की है ?

ये कुछ बातें हैं जो हम लोगों में से भी कुछ ऐसे लोगों की विचार-धारा चित्रित करती हैं जो देश का भला करना चाहते हैं और जनता के रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठाना चाहते हैं। मेरा यह मतलब नहीं है कि हमारी लोकहित योजनाओं में सचाई और ईमानदारी की कमी है। लेकिन हमें एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाना चाहिए जिससे हम पहले करने योग्य कामों को पहले करें और वैज्ञानिक रूप में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का कार्य आरंभ करने से पूर्व बीच की खाइयों और दरारों को भर सकें। अगर हम ठीक तरीके से मकान बनाना चाहते हैं तो हमें पहले जमीन को समतल बनाना होगा और गर्द व गंदगी साफ करनी होगी। इसी प्रकार यदि हम स्वस्थ आधार पर भारत का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं तो हमें साफ दिखाई देने वाली सामाजिक और आर्थिक असमताओं को दूर करना होगा और समाज के निम्नतम व दरिद्रतम भागों की सहायता करने की कोशिश करनी होगी। हमें प्राथमिकता की लम्बी कतार में खड़े सबसे आखिरी आदमी का सबसे पहला ख्याल करना चाहिए। संक्षेप में, हमारी विकास योजनाओं में प्रथम अंतिम और अंतिम प्रथम होना चाहिए। तभी हम गांधीजी के स्वप्न के एक नए भारत के निर्माण की आशा कर सकते हैं।

२२ सितम्बर, १९५४

छोटे उद्योगों का अर्थशास्त्र

भारत में छोटे उद्योगों पर अन्तर्राष्ट्रीय योजना दल की रिपोर्ट ने एक बार फिर सरकार और उद्योगपतियों का ध्यान देश में छोटे पैमाने के और कुटीर-उद्योगों के विकास की नितांत आवश्यकता पर केन्द्रित किया है ताकि बेरोजगारी और, उससे भी अधिक, अर्धरोजगारी की समस्या हल हो सके । रिपोर्ट में ठीक ही संकेत किया गया है कि "भारतीय मंडी दुनिया की सबसे बड़ी भावी विदेशी मंडियों में से एक है ।" विदेशी विशेषज्ञों ने खुले तौर पर कहा है कि "छोटे उद्योगों के विकास की दर धीमी, बल्कि जितनी संभव है उससे बहुत अधिक धीमी है ।" अध्ययनकर्ता दल का मुख्य विचार यह है कि छोटे उद्योगों में वर्तमान कमियों के मौलिक कारण "उनके इन्तजाम और उत्पादन के तरीके हैं जो उत्पादन में कार्य-कुशलता की मौजूदा मांगों से बहुत पीछे हैं तथा नवीकरण के बेहतर तरीकों को अपनाने में हिचकिचाहट या असफलता भी इसका बड़ा कारण है ।" अन्तर्राष्ट्रीय योजना दल ने छोटे उद्योगों के लिए बहु-प्रयोजन टैक्नॉलोजी की संस्थाएं स्थापित करने की सिफारिश की है और सरकार ने इस सिफारिश को कार्यान्वित करने का फैसला कर लिया है और घोषणा की है कि छोटे पैमाने के उद्योगों की शिक्षा देने के लिए भारत के विभिन्न भागों में चार प्रादेशिक संस्थाएं स्थापित की जाएंगी । ये संस्थाएं सेवा के साधनों के रूप में काम करेंगी और छोटे उद्योगों के उत्पादन और इन्तजाम के तरीकों को सुधारने, कर्ज और धन प्राप्त करने, कच्चे सामानों को मुहय्या करने और अच्छे से अच्छे दामों पर उत्पादित वस्तुएं बेचने और छोटे उद्योगों को बड़े पैमाने के उद्योगों के सहायक के रूप में बढ़ाने के लिए उनके उत्पादन के कार्यक्रमों में सामंजस्य द्वारा विकास को प्रोत्साहन देने के लिए मदद करेंगी । सरकार ने हाट-व्यवस्था कार्पोरेशन की स्थापना के लिए फोर्ड फाउंडेशन दल की सिफारिश भी स्वीकार कर ली है । यह कार्पोरेशन प्रादेशिक संस्थाओं के कार्यों से अपना मेलजोल स्थापित करेगी । सरकार की मांग पूरी करने की दृष्टि से उत्पादन संगठित करने के लिए छोटे उद्योगों की एक कार्पोरेशन भी स्थापित करने का फैसला किया गया है । डिजाइनों के राष्ट्रीय स्कूल, निर्यात विकास कार्यालयों और औद्योगिक सहकारी समितियों के संबंध में दल की दूसरी सिफारिशों पर भारत सरकार गौर कर रही है । इस बीच में सरकार ने छोटे पैमाने के उद्योगों का एक बोर्ड बनाने का फैसला किया है जिसमे भारत सरकार के मंत्रालयों और राज्य सरकारों के प्रतिनिधि शामिल होंगे । बोर्ड का कार्य यह होगा कि वह उपर्युक्त संगठनों के

कार्यों पर नियंत्रण रखे और उनका एकीकरण करे और आमतौर पर भारत में छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास के लिए कार्यक्रम बनाए और उनको कार्यान्वित करे।

हम इस देश में छोटे उद्योगों के क्षेत्र में "नवीकरण" की समस्या पर विदेशी विशेषज्ञों की सिफारिशों की समीप से परीक्षा करना चाहेंगे। रिपोर्ट में कहा गया है कि "नवीकरण के बिना भारतीय मजदूरों और शिल्पकारों के प्राकृतिक गुण आधुनिक टैक्नॉलोजी के विरुद्ध निराशाजनक दौड़ में नष्ट किए जा रहे हैं। जब तक अधिक वस्तुओं और अधिक धन के उत्पादन में इन मजदूरों की मदद नहीं की जाती तब तक न मजदूरी बढ़ाई जा सकती है और न ही रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठाया जा सकता है। आप किसी चीज के उत्पादन के बिना उसका वितरण नहीं कर सकते।" विशेषज्ञों ने आगे चल कर यह विचार रखा कि "नवीकरण और आधुनिकीकरण को रोकना न केवल युक्ति-विरुद्ध है बल्कि इसके कारण भारत के छोटे उद्योगों पर स्थिरता और विगति थोपी जाएगी।" उनका यह भी विचार है कि आधुनिकीकरण से बेरोजगारी पैदा होने की बजाय अधिक रोजगार मिलेगा। "सुधारों का मतलब यह होगा कि कम से कम कीमत पर अच्छी और बढ़िया वस्तुएं मिलेंगी जिससे मांग और मंडियां बहुत बढ़ जायेंगी और इस प्रकार रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होंगे।" फोर्ड फाउंडेशन दल के इन कथनों पर ध्यानपूर्वक विचार करने और उनकी परीक्षा करने की जरूरत है। हम नहीं जानते कि क्या कभी इन विशेषज्ञों ने वर्धा में अखिल भारतीय ग्रामोद्योग इसोसियेशन के केन्द्र तक जाने की चिन्ता की और क्या उन्होंने गांधीजी के नजरिए को समझने की कोशिश की। जहां तक हमें विदित है अन्तर्राष्ट्रीय योजना दल ने इस प्रकार की कोई चेष्टा नहीं की। यकीनन यह दुर्भाग्य की बात है। हम अपने उत्पादन के तरीकों में सुधार करने के लिए विदेशी विशेषज्ञों से शिक्षा लेने को तैयार हैं, परन्तु यदि ये विशेषज्ञ इस धारणा से भारत आते हैं कि गांधीजी, उनके साथियों और भारत के राष्ट्रीय नेताओं ने इस समस्या पर पिछले बीसों सालों में कोई विचार नहीं किया तो वे बड़ी भारी गलती पर हैं।

गांधीजी स्वयं मशीन के खिलाफ नहीं थे। वे चरखे में सुधार करने के बड़े इच्छुक थे और उन्होंने ऐसे लोगों के लिए जो बेहतर चरखे तैयार करेंगे आकर्षक इनामों की घोषणा की। वर्धा में उन्होंने भारत के छोटे उद्योगों के उत्पादन के तरीकों में सुधार करने के लिए लगातार तजुर्बे किए। अतः गांधीजी आधुनिकीकरण और टैक्नॉलोजी की प्रगति के विरुद्ध नहीं थे। वे यंत्रीकरण और श्रम बचाने

के तरीकों के लिए "पागलपन" के खिलाफ थे, और खास तौर से भारत जैसे देश में जहां श्रम बहुत है और पूंजी कम है। गांधीजी का कहना था, "यंत्रीकरण उस हालत में अच्छा है जबकि आवश्यक कार्य करने के लिए बहुत कम लोग हैं।" यह उस हालत में कुकर्म है जब काम करने के लिए, आवश्यकता से अधिक लोग हैं जैसा कि भारत में हैं।" इसलिए वे उन मशीनों का स्वागत करते थे "जिनसे झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों का बोझ हलका हो जाए।" गांधीजी बिजली के प्रयोग के भी विरुद्ध नहीं थे। गांधीजी का कहना था, "यदि हम हर ग्रामीण घर में बिजली पहुंचा सकें तो मुझे इस चीज पर एतराज नहीं होगा कि ग्रामीण लोग बिजली द्वारा अपने औजार और हथियार चलाएं।" इन सब मामलों में सर्वप्रथम जिस बात का ध्यान रखना जरूरी है वह है मनुष्य, जिसका आवश्यक तौर पर यह मतलब है कि लोगों को पूर्ण रोजगार दिया जाए। यह सच है कि यदि देश की कुल संपति को बढ़ाना है तो उत्पादन के ढंग में सुधार जरूरी है। परन्तु कुल संपत्ति बढ़ाने मात्र से, रोजगार के पर्याप्त साधनों द्वारा लोगों की क्रयशक्ति बढ़ाए बिना, हमारी मूल समस्याओं का हल नहीं होगा। इसलिए हमारा उद्देश्य "पूर्ण रोजगार तथा अधिकतम उत्पादन" होना चाहिए। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि अपने उद्योगों द्वारा बनाई हुई वस्तुओं की खपत के लिए हम विदेशी मंडियों पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रह सकते। हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि इस देश में ही बढ़ती हुई मंडी बनाई जाए। यह केवल उसी समय संभव हो सकता है जब हम उत्पादन के अधिक पूंजी खपाने वाले तरीकों की बजाय अधिक श्रम खपाने वाले तरीकों का इस्तेमाल करें।

अतः हम आधुनिकीकरण या नवीकरण के विरुद्ध नहीं हैं। तरन्तु छोटे पैमाने के और कुटीर-उद्योगों के उत्पादन के तरीकों में सुधार करने की अपनी उत्सुकता के कारण हमें उचित सीमा नहीं लांघनी चाहिए और न नई समस्याएं खड़ी करनी चाहिएं। स्वभावतः नवीकरण का रूप और रंग विभिन्न देशों में और एक ही देश के विभिन्न भागों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार मुख्तलिफ होगा। हो सकता है अमरीका और रूस का एक खास किस्म का टैक्नॉलोजी का सुधार, जहां मुकाबलतन श्रम कम है भारत में बिलकुल न फबे जहां प्रमुख समस्या लोगों को रोजगार देने की है। भारत के अन्दर ही, एक खास तरह का तरीका जो राजस्थान के लिए अच्छा है, हो सकता है ट्रावनकोर-कोचीन के लिए उपयुक्त न हो, जहां आबादी बहुत अधिक घनी है। इसलिए आधुनिक तरीकों को अपनाने में लगातार सचेत रहने, ध्यान देने और अनुसंधान करने की आवश्यकता है ताकि वैज्ञानिक सुधारों के फायदों और उनकी रोजगार दिलाने की शक्ति के बीच संतुलन स्थापित किया जाए।

हमें पूर्ण आशा है कि भारत सरकार देश के विभिन्न भागों में जो प्रादेशिक संस्थाएं स्थापित करेगी वे इन सब बातों को ध्यान में रखेंगी ताकि हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की मूलभूत समस्याओं का संतोषपूर्वक ढंग से हल हो सके। हमें पता लगा है कि अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड ने भी कलकत्ता में एक अनुसंधान केन्द्र बनाने का फैसला किया है। बोर्ड ने हाल में ही नासिक में खादी के काम की शिक्षा देने के लिए एक स्कूल खोला है। सरकार को चाहिए कि वह अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड के कार्यों और तजुर्बों का नए छोटे पैमाने के उद्योगों के बोर्ड के कार्यों से एकीकरण स्थापित करे ताकि दोहरा काम करना न पड़े और विचारों में संघर्ष उत्पन्न न हो। हमें इस कार्य को खुले दिल से, किसी खास विचार को सिद्धान्त या "मंत्र" का रूप दिए बिना, करना चाहिए। हमारे कार्य का ढंग वैज्ञानिक और युक्तिपूर्ण होना जरूरी है और उसे स्थिति की वास्तविकता से विमुख नहीं होना चाहिए। किसी भी प्रकार की सिद्धान्त-परायणता, चाहे वह आधुनिकीकरण के लिए हो या पुराने तरीकों के लिए, आत्मघातक सिद्ध होगी।

७ जुलाई १९५४

ग्रामीण समुदायों के आधार पर राष्ट्रीय आयोजन

हमारे भारतीय संघ के संविधान का एक निदेशक तत्व यह है "राज्य ग्राम पंचायतों का संघटन करने के लिए अग्रसर होगा, तथा उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।" गांधीजी ने भी इसी बात पर बहुत ज़ोर दिया कि हमको ग्राम पंचायतों को पुनर्जीवित कर भारत में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना चाहिए । उनके स्वप्नों के स्वराज्य के अनुसार सारे देश में 'स्वावलम्बी और स्वशासित ग्राम जनतन्त्र' होना चाहिए। यह सौभाग्य की बात है कि प्रायः सब ही राज्य सरकारों ने अपने-अपने क्षेत्रों में ग्राम पंचायतों की स्थापना के वास्ते आवश्यक कानून बना दिए हैं। यह सही है कि विभिन्न राज्यों में इस प्रकार जो ग्राम पंचायतों की कल्पना की गई है, उनका विधान और उनको प्रदत्त शक्ति एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं। पर यह निर्विवाद है कि उनके अन्दर वह तमाम तत्व विद्यमान हैं जो अंकुरित होने पर सुसंगठित ग्रामीण समाजों के आधार पर हमारे देश में नए प्रकार के जनतन्त्र को शक्तिशाली बनाने में समर्थ होंगे।

अर्वाचीन काल से हमारे देश में ग्रामीण समाजों का राष्ट्रीय जीवन में एक अति महत्वपूर्ण एवं अविभाज्य भाग रहा है। वेदों में ग्रामिणी अथवा ग्राम के नेता की चर्चा है जातक कथाओं में भी ग्राम सभाओं की चर्चा पाई जाती है। धर्म-सूत्रों में भी गण और पग का बहुधा वर्णन मिलता है, जिनसे तात्पर्य प्राचीन भारत की ग्रामीण एवं शहरी नगरपालिकाओं जैसी संस्थाओं से है। वास्तव में भारत के यह ग्रामीण जनतन्त्र हिन्दू, मुस्लिम और पेशवाई हुकूमतों तक फलते फूलते रहे। उनका खात्मा तो भारत में अंग्रजों की ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने के बाद प्रारम्भ होता है। राज्यवंश उठे और गिरे, समाजों का उत्थान एवं पतन हुआ, परन्तु ये ग्रामीण समाज अपनी अविच्छिन्न गति से चलते रहे। सर चार्ल्स मेटकॉफ नामक एक अंग्रेज शासक ने कहा है ये ग्रामीण समाज "तब भी बराबर जीवित से प्रतीत होते हैं, जहां और सब चीजें निवष्ट हो जाती प्रतीत होती हैं।" सर चार्ल्स ट्रेवेलियन नामक एक-दूसरे अंग्रेज के शब्दों में "ग्रामों की नगरपालिकाएं इसी प्रकार भूमि से चिपकी हुई प्रतीत होती हैं, जैसे भूमि से पैदा होने वाले कुश।" अंग्रेजी जमाने में ही मुख्यतः इन ग्राम पंचायतों का विघटन प्रारम्भ हुआ और

शासन के एवं आर्थिक संगठन के बेहद विकेन्द्रीकरण के कारण यह ग्राम पंचायतें खत्म हो गईं। आज पश्चिमी देशों के सब ही प्रमुख राजनीतिक और सामाजिक विचारक इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि यदि आधुनिक जनतन्त्रवाद को एक सामाजिक और आर्थिक संगठन के रूप में क्रियात्मक क्षेत्र में सफल होना है तो उसके लिए यह ज़रूरी है कि उसका विकेन्द्रीकरण हो। सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो. जोड ने कहा है: "यदि सामाजिक संगठन के प्रति मनुष्य के विश्वास को पुनः जागृत करना है तो उसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि राज्य के कार्य क्षेत्रों को कम किया जाए और उसके कार्य को वितरित कर दिया जाए।" डा० बूडिन का भी मत है कि "छोटे-छोटे सुगठित गणतन्त्र ही सभ्यता की सच्ची नैतिक इकाइयां हो सकती हैं।" आधुनिक समाज-शास्त्र भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि "मनुष्य तब ही सबसे अधिक सुखी रहता है जब वह छोटे-छोटे समुदायों में निवास करता हो।" आधुनिक राज्यों की बुराइयों की विवेचना करते हुए प्रो. एडम चाहते हैं कि "हम लोग सब बुराइयों की जड़ तक पहुंचें और शक्ति के विकेन्द्रीकरण की दिशा में निर्भय नीति अपनावें।" सुप्रसिद्ध अमरीकी शास्त्री ल्यूविस मम्फर्ड ने भी इस बात की सिफारिश की है कि "खुली जगहों में छोटे संतुलित समाज की स्थापना हो।" आधुनिक अमरीका में छोटे-छोटे समुदाय आज भी ग्रामीण जीवन के पुनर्जागरण और सहकारी प्रयास में बड़ा महत्वपूर्ण भाग ले रहे हैं। "केन्टुकी की दौड़" ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की एक रोचक कहानी है, जिसके अन्तर्गत छोटे क्षेत्रों में सब मिलकर एक-दूसरे की भलाई का काम करते हैं। अपनी पुस्तक "स्माल टाऊन रिनेसांस (छोटे नगरों का पुन-र्जागरण)" में प्रो. रिचर्ड पेस्टन ने बड़े जोरों से इस बात पर ज़ोर दिया है कि "सशक्त तथा क्रियाशील छोटे-छोटे समुदायों में ही वह आवश्यक वायुमंडल पाया जाता है, जिसके अन्तर्गत जनतन्त्रवाद पनप सकता है और शक्तिवान् बना रह सकता है।" फिर डा० बरसोडी आज ऐसे ही एक विकेन्द्रित छोटे-छोटे समुदाय का प्रयोग न्यूयार्क के निकट-स्थित अपने 'जीवन विद्यालय' में चला रहे हैं। अमरीका में ही येलो स्प्रिंग्स् (ओहियो) में डा. मार्गन द्वारा सामुदायिक जीवन को संगठित करने का प्रयास जनतान्त्रिक ग्राम जीवन को स्थायी बनाने और जीवित रखने का एक वीरतापूर्ण प्रयास है।

इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि ग्राम पंचायतों की कल्पना न तो मध्ययुगीन कल्पना है और न ही वह कबायली प्रणालियों का अवशेष है। जैसा कि डा. राधा-कृष्णन ने कहा है, "ग्रामों की ओर पुनः जाना पुरातन-पंथी बनना कदापि नहीं है, वरन् भारत की निहित प्रवृत्तियों के अनुरूप जीवन स्थापित रखने का वही एकमात्र तरीका है।" फिर अपनी पुस्तक "डैमोक्रेसीज ऑफ दी ईस्ट (पूर्व के जनतन्त्र)"

में डा. राधाकमल मुकर्जी ने बताया है कि किस प्रकार ग्रामीण समुदायों से ही उसे नयी प्रकार की जीवन विधि प्राप्त होगी, जिसके अन्तर्गत विविध स्थानीय एवं क्रियावान गुणों का एकसूत्रीकरण अधिक संतोषदायक होगा, आज के केन्द्रित संसदीय ढांचे के अन्तर्गत की शासकीय प्रणाली से कई गुना अधिक। वास्तव में "पुरातन-पंथी" और 'पिछड़े हुए' होने की बजाय, यदि देखा जाए तो, आर्थिक एवं शासनिक ढांचे की इकाइयों के रूप में ग्रामीण पंचायतोंका संगठन आज के विज्ञान युग और आज की वैज्ञानिक प्रगति की भावनाओं के अनुकूल ही होगा। सच तो यह है कि अपनी तमाम आधुनिक यान्त्रिक सफलताओं के साथ विज्ञान के लिए यह ही श्रेयस्कर है कि वह विकेन्द्रीकरण को न कि केन्द्रीकरण को स्थान दे। यह भी सोचना गलत है कि ग्रामीण पंचायतों के कारण हम एक दूसरे से दूर हटते चले जाएंगे। प्राचीन काल में भी सब ही स्तरों पर सब कार्यों का एकसूत्रीकरण होता रहता था। सच तो यह है कि विज्ञान और जनतन्त्र की प्रगति के साथ ही साथ अवश्यम्भावी रूप से आधुनिक काल में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए।

जनतन्त्र के अन्दर जो योजना चलाई जाती है वह तब ही सफल हो सकती है जब कि हम नीचे से ही अपने भवन का निर्माण प्रारम्भ कर दें, और इस बात का प्रयास न करें कि अपनी योजनाओं को लोगों के गले के नीचे ऊपर से ढकलें। अतः स्वस्थ आर्थिक आयोजन का निचोड़ ही यही है कि हम सुंगठित ग्रामीण, और ग्रामीण ही नहीं, शहरी समुदायों के रूप में विकेन्द्रीकरण करें। हमको इस बात का संतोष है कि पंचवर्षीय योजना में आर्थिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण की इस आवश्यकता को ध्यान में रखा गया है। समाज विकास एवं राष्ट्रीय विस्तार योजनाओं के रूप में जो कदम उठाया गया है, वह बिल्कुल सही कदम है, यद्यपि यह बात समझ में आ सकती है कि कुछ बातों सें किसी की ईमानदारी से मतभेद हो सच में तो हमारी राय यह है कि स्थानीय योजनाओं की बात ही हमारी राष्ट्रीय आयोजन की प्रमुख बात है, और ये स्थानीय योजनायें तब ही राष्ट्रीय रूप से सफल हो सकेंगी जब हमारे लम्बे चौड़े भारत देश में संगठित ग्रामीण समुदाय पंचायतों के रूप में हों। हमारा नागरिक एवं न्याय शासन भी तब ही स्पष्ट रूप से उन्नति करेगा जब हम अपने स्वराज्य के ढांचे को नीचे से अर्थात् ग्रामीण समुदायों के आधार पर खड़ा करने के लिए गंभीर रूप से प्रयास करें।

हमारे भारत देश में ग्रामीण पंचायतों की पुरातन परम्पराएं दलगत राजनीति पर कभी भी आधारित नहीं रहीं, वरन् उनमें तो सदैव ही सब दलों का समान सहयोग रहा। दूसरे शब्दों में हम उन परम्पराओं को "संयुक्त" जनतन्त्र

कह सकते हैं। हमारे देश में तो पंचों की आवाज़ को परमेश्वर की आवाज स्वीकार किया गया है—पंच परमेश्वर ही हमारे ग्रामीण जनतन्त्रों का आदर्श था। अधिकांशत: पंचायतों के चुनाव एकमत से हुआ करते थे। यदि कभी एकमत होना संभव न होता था तो उस समय चुनाव का निर्णय लाटरी द्वारा होता था और गांव का सबसे छोटा बच्चा लाटरी निकालता था। अत: यदि हम अपने देश का पुर्ननिर्माण नीचे से ऊपर तक करना चाहते हैं और इस प्रकार जनतन्त्रवाद की दृढ़ बुनियाद स्थापित करना चाहते हैं तो हमें अपनी पंचायतों को संयुक्त जनतन्त्रवाद के आदर्श पर ही पुनर्जीवित करना होगा। यह उचित ही है कि कांग्रेस कार्यकारिणी ने सब प्रदेश कांग्रेस कमेटियों को यह आदेश दिया है कि जहां तक सम्भव हो कांग्रेस को पंचायतों के चुनावों में दलगत रूप से हिस्सा नहीं लेना चाहिए। प्रजा समाजवादी दल का भी यही मत है। हम आशा करेंगे कि दूसरी राजनीतिक पार्टियां भी इस विषय पर गंभीरता से विचार करेंगी और यह निर्णय करेंगी कि हम ग्राम पंचायतों को अपने राजनीतिक अखाड़ेबाजी का अड्डा नहीं बनायें। हम सबको एक-दूसरे से अपनी पुरातन ग्राम पंचायतों के आदर्शों को पुन: जीवित करने के लिए और उन्हें अति विस्तृत और व्यापक आधार पर, दलबन्दियों और फिरकापरस्तियों से दूर, जागृत जनतन्त्रवाद के रूप में खड़ा करने के लिए सहयोग करना चाहिए। तब ही हम भारत का पुर्ननिर्माण उसकी निहित क्षमता और विशेषता के अनुरूप कर पायेंगे।

यहां हम एक बात और कह देना चाहेंगे। अपनी ग्राम पंचायतों के पुनर्गठन की दिशा में सुसंगठित और नियमित रूप से निश्चित कदम उठाने के पहले यह अत्यावश्यक है कि हम विभिन्न राज्यों के ग्रामीण समाजों के सम्बन्ध में, और उनकी वर्तमान स्थितियों के सम्बन्ध में, सब आवश्यक आंकड़े और सूचनाएं एकत्रित करें। वास्तव में यह अब आवश्यक हो गया है कि हम भारत के विभिन्न राज्यों के पंचायत अधिनियमों का समानान्तर अध्ययन करें। हमारा अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यालय शीघ्र ही इस संबंध में आवश्यक सूचना तथा आंकड़े एकत्रित करने की योजना बना रहा है ताकि इस मसले पर जिन लोगों को दिलचस्पी हो उन्हें आवश्यक बातों का पता लग जाए और वह उससे लाभ उठावें। हमारा यह प्रस्तावित प्रकाशन भारत की ग्रामीण पंचायतों की कार्य-प्रणाली का भविष्य में क्या स्तर होना चाहिए, उसको इंगित करेगा। हम सब ही संबंधित महानुभावों से निवेदन करेंगे कि वे अपने देश के कोटि-कोटि नर-नारियों की भलाई के लिए नीचे से ऊपर आयोजन करने की दिशा में हम जो यह काम उठा रहे है, उसमें अपनी सहायता प्रदान करें।

५ नवम्बर १९५३

मनुष्य और मशीनें

आज भारत में मनुष्यों और मशीनों के बीच एक दौड़ हो रही है। एक ओर लाखों व्यक्ति काम और अधिक रोजगार के लिये सटपटा रहे हैं और दूसरी ओर मनुष्य-शक्ति पर निर्भरता कम करने के लिये यंत्र-विशेषज्ञ और उद्योगपति ऐसी बढ़िया किस्म की मशीनें बनाने में लगे हुए हैं जिनसे मनुष्य-शक्ति की जरूरत कम रह जाए। यह सब कुछ आधुनिक विज्ञान और यांत्रिक प्रगति के नाम में किया जा रहा है। हमारी बहु-प्रयोजन नदी-घाटी योजनाओं से संबंधित कई बांध बांधे जा रहे हैं। ईंट और पत्थर के स्थान में हम सीमेंट और बरी चूने से बने हुए मसाले का इस्तेमाल कर रहे हैं। हमारे इंजीनियर और यन्त्र-विशेषज्ञ रोज़गार की दृष्टि से दोनों में कोई फर्क महसूस नहीं करते। चूना और ईंटें इस्तेमाल करने वाला इमारती काम मजदूरों की एक बड़ी संख्या को लाभकारी अतिरिक्त रोज़गार दे सकता है। सीमेंट और बरी चूने के मसाले से यद्यपि इमारत शीघ्र बनाई जा सकती है परन्तु भारत जैसे देश के लिये, जहां प्रमुख समस्या मनुष्य शक्ति को काम में लगाने की है, यह कोई बहुत उपयोगी तरीका नहीं है। देश के विभिन्न भागों में हजारों टयूब-वेल बनाए जा रहे हैं। परन्तु हमारे इंजीनियर हाथ से छेदने के बर्मे की बजाय बहुत ही कीमती अमरीकी मशीनों का प्रयोग कर रहे हैं जो, बिना शक, काम तो जल्दी करती हैं परन्तु हमारे लाखों अर्धरोजगार प्राप्त व्यक्तियों को राष्ट्रीय निर्माण के कार्यों में सक्रिय हिस्सेदार बनने का मौका नहीं देतीं। ग्रामीण कारीगर अपने कुटीर-उद्योगों, जैसे करघे से कपड़ा बुनाई, तेल निकालना, चावल कूटना गुड़ बनाना और हाथ की छपाई में रहकर अपनी रोज़ी कमाने का कठिन परिश्रम कर रहे हैं। परन्तु उद्योगपति आधुनिकतम कपड़ा बुनने की मशीनें, तेल निकालने की मशीनें, चीनी के कारखानों में इस्तेमाल होनेवाली मशीनें और कुटाई की मशीनें बाहर से बराबर मंगा रहे हैं जिनके कारण ग्रामीण उद्योगों की समाप्ति हो रही है। हमें बीड़ी बनाने के उद्योग से कोई प्रेम नहीं है; इससे लगभग ६ लाख लोगों को रोजगार मिलता है। परन्तु अब हमारे देश में ही नई मशीनें बन गई हैं जिनको यदि सरकार पूरी स्वतंत्रता दे दे तो वे लगभग ५ लाख बीड़ी बनाने वालों को बेरोज़गार कर देंगी।

प्रमुख बात को सिद्ध करने के लिए ये केवल कुछ उदाहरण-मात्र हैं। हम मशीनों के विरुद्ध नहीं हैं। यह सोचना कि मशीनें स्वयं अच्छी या बुरी हैं बहुत

गलत है; उनका इस्तेमाल उन्हें बुरा या अच्छा बनाता है। महात्मा गांधी भी मशीनों के विरुद्ध नहीं थे; वे मजदूरों की आवश्यकता कम करने के तरीकों और मशीनों के लिये "पागल बन जाने" के विरुद्ध थे। संभवत: कोई भी व्यक्ति समय की बचत करने वाली मशीनों के खिलाफ नहीं हो सकता। हम सब यातायात के आधुनिक साधनों जैसे रेलों, हवाई जहाजों और मोटरकारों का स्वागत करते हैं। हथियार और बम-बारूद की किस्म की विध्वंसकारी मशीनें भी हैं; मनुष्यों को कत्ल करने के लिए उनके बेरोकटोक इस्तेमाल के कोई भी हक में नहीं होगा। प्रमुख विवाद उत्पादन की मशीनों के संबंध में है। वे दो प्रकार की हैं—मनुष्य शक्ति की आवश्यकता कम करने वाली और मनुष्य शक्ति की जरूरत बढ़ाने वाली। मनुष्य शक्ति की जरूरत कम करने वाली मशीनें उस देश या इलाके के लिए अच्छी हैं जहां मनुष्यों की कमी हो, परन्तु एक ऐसे देश में जहां लोगों को साल में कई महीने जबरदस्ती बेकार रहना पड़ता है, मशीनें वास्तविक सिरदर्दी बन जाती हैं। एक मशीन जो संयुक्त राष्ट्र अमरीका के लिये वरदान है, वही मशीन भारत जैसे कम-विकसित देश के लिए जहां पूंजी की कमी है और मनुष्य शक्ति बहुत है यथार्थ शाप बन जाएगी। हमारा अन्तिम आदर्श मनुष्य की बहबूदी है। ऐसी मशीनें जो मनुष्यों को बेरोजगार बनाये बिना उसका प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने में सहायक हों निश्चित ही अपनानी चाहिएं। परन्तु ऐसी मशीनें जो मनुष्य-शक्ति का स्थान स्वयं ले लें और मनुष्यों को अपना दास बना लें मनुष्य जाति के लिये लाभदायक नहीं हैं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि औद्योगिक और आर्थिक विकास की हमारी सब योजनाओं में मनुष्य सर्वप्रथम और सबसे बड़ा अंश है। गांधीजी ने भी हमें बताया कि "मनुष्य मशीनों की निस्बत बहुत ज्यादा महत्व रखता है।"

आज भारत के सामने बेरोजगारी की कठिन समस्या है और इससे भी अधिक अर्धरोजगारी की। इस समस्या को सुलझाने के लिए विदेशी और भारतीय 'विशेषज्ञ' कई नुस्खे बता रहे हैं। परन्तु दिन प्रति दिन यह अधिकाधिक महसूस किया जा रहा है कि छोटे पैमाने के कुटीर और ग्रामोद्योगों के रूप में उत्पादन का विकेन्द्रीकरण किए बिना भारत के लोगों को अधिक रोजगार देना असंभव है। प्रथम पंचवर्षीय योजना ने ठीक प्रकार इस ओर ध्यान आकर्षित किया है और भारत सरकार ने भी अपनी आर्थिक नीति के एक अंग के रूप में ग्रामोद्योगों की योजना को अपनाया है। आज भारत के सभी बड़े-बड़े कारखानों में केवल ३० लाख व्यक्ति काम करते हैं जबकि उनमें लगभग १५०० करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है। वे लोग जो अभी भी भारत में बड़े पैमाने का औद्योगीकरण करके बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने का स्वप्न देखते हैं इस बात को महसूस नहीं

करते कि यदि बड़े कारखानों में लगाने के लिये आवश्यक धन मिलना संभव भी हो तो भी उन कारखानों में बनी हुई वस्तुओं के लिए पर्याप्त मंडियां ढूंढ निकालना नामुमकिन होगा। चाहे हम नैतिक आधार पर इसमें कोई एतराज न भी करें तो भी बस्तियां बसाने और साम्राज्यवादी फायदों के लिए विदेशों को जीतने की सोचना अब बहुत पुरानी बात हो गई है। बड़े पैमाने के उत्पादन में तीसरी श्रेणी के रोज़गार की बात करना भी व्यर्थ है क्योंकि ऐसा अतिरिक्त रोज़गार तो छोटे पैमाने के उद्योगों में भी मिल सकता है। इसलिए केवल आर्थिक दृष्टि से ही यह निहायत जरूरी है कि राज्य, भारत में छोटे पैमाने के और ग्रामोद्योग फैलाने के लिए अधिक-से-अधिक सुविधाएं दे ताकि इस देश के नागरिकों को इस बात का पर्याप्त अवसर मिल सके कि वे उत्पादक रोजगारों द्वारा अपनी रोजी कमा सकें। खादी और ग्रामोद्योगों का अर्थशास्त्र कुछेक गांधीवादियों की 'धुन' नहीं है; यह तो हमारे संविधान के निदेशक तत्वों को पूरा करने तथा इस देश में शांति और जनतंत्रवाद बनाए रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। हमारी आबादी बहुसंख्यक और पूंजी के साधन बहुत सीमित होते हुए हमारे लिए संयुक्त राज्य अमरीका और ब्रिटेन जैसे अत्यन्त विकसित और अमीर देशों की नकल करना आत्मघात होगा। हमारी समस्यायें ज्यादा चीन और जापान की समस्याओं से मिलती हैं जो छोटे पैमाने के और कुटीर-उद्योगों के घर हैं। कुटीर और ग्रामोद्योगों की केवल शाब्दिक बड़ाई कर देने से काम नहीं चलेगा। हमारे सामने दो ही रास्ते हैं—विकेन्द्रीकरण अथवा तबाही।

हमें बताया जाता है कि ग्रामोद्योगों से हम पुराने जमाने की ओर चले जाएंगे और आर्थिक विकास की प्रगति होने की बजाय हम पीछे की ओर हट जायेंगे। यह भी इंगित किया जाता है कि विकेन्द्रीकृत उत्पादन से हमारा जीवन-स्तर गिर जाएगा और उत्पादन कम हो जाएगा। यह एक गलत धारणा पर आधारित है। यह सच है कि कुछ समय के लिए हमें मोटे और ज्यादा मंहगे मालों से तृप्त होना पड़े; परन्तु आधुनिक शिल्प-कला-विज्ञान इतनी तेजी से विकसित हो रहा है कि शीघ्र ही कार्यकुशलता और उत्पादन शक्ति दोनों में विकेन्द्रीकृत मशीनें केन्द्रित मशीनों से आगे बढ़ सकती हैं। औद्योगिक क्रांति कोयले की शक्ति के इस्तेमाल के साथ शुरू हुई। कोयले के इस्तेमाल के कारण उद्योगों का कुछ केन्द्रित हो जाना अनिवार्य था। बिजली के इस्तेमाल से ग्रामीण क्षेत्रों में उद्योगों को फैलाना संभव हो गया है। अब अणुशक्ति भी नागरिक प्रयोग में लाई जा रही है और इससे एक-दो दशाब्दियों के औद्योगीकरण के ढंग में पूर्ण क्रांति हो सकती है। हमें इस बात में बिल्कुल शक नहीं है कि अणुशक्ति के प्रयोग से उद्योगों का पूर्ण विकेन्द्रीकरण हो सकेगा। वास्तव में आधुनिक विज्ञान और शिल्प-कला-विज्ञान

के कारण केन्द्रित उद्योग धीरे-धीरे "अवैज्ञानिक" बन रहे हैं। आनेवाले जमाने में विकेन्द्रीकृत ढंग का उत्पादन ही औद्योगिक विकास के लिये केवल मात्र वैज्ञानिक तरीका होगा। यन्त्र कला सुधर जाने पर छोटे पैमाने के और कुटीर-उद्योग भी वर्तमान बड़े पैमाने की फैक्ट्रियों और मिलों से सस्ते हो जायेंगे। संयुक्त राष्ट्र अमरीका जैसे देश में भी जहां उद्योगों का बहुत विकास हुआ है उद्योगों को विभिन्न स्थानों में फैलाने की गति चल पड़ी है। अणु-काल होने के कारण राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से भी विकेन्द्रीकरण करना जरूरी हो गया है। खास तौर पर अणुशक्ति प्रयोग करने वाले युद्ध के दौरान बड़े पैमाने के कारखाने बम गिराने के लिये आसानी से निशाना बनाए जा सकते हैं। मजदूरों और पूंजीपतियों का झगड़ा एक दूसरा महत्वपूर्ण कारण है जिससे विकेन्द्रीकृत उत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि छोटे पैमाने के और कुटीर-उद्योगों में मजदूरों और उत्पादक साधनों के स्वामी एक ही होते हैं। न केवल औद्योगिक सहकारी समितियां यंत्रकला की दृष्टि से अधिक कार्यकुशल ही होंगी बल्कि समाजशास्त्र की दृष्टि से अधिक गतिशील भी।

अब फैसला करने का समय है। 'टालमटोल' की नीति पर चलना अब बिल्कुल इष्ट नहीं है। हमें दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए और इसी प्रकार कार्य भी करना चाहिए। गांधीवादी राष्ट्रीय आर्थिक अवस्था को अच्छी प्रकार अपनाए बिना भारत के लिये हमें मुक्ति का कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। बेरोजगारी, गरीबी और भूख हमारे असल दुश्मन हैं। देश भर में छोटे पैमाने के और ग्रामोद्योगों का जाल फैलाये बिना उनका अन्त नहीं किया जा सकता। स्वार्थी लोग आर्थिक शक्ति के इस विकेन्द्रीकरण के रास्तों में रोड़ा जरूर अटकायेंगे क्योंकि इससे शोषण करने और बिना मेहनत किए नफा उठाने के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। परन्तु इस प्राचीन देश में जनतंत्र और शांति की रक्षा के लिए हमें स्वार्थियों के विरोध का दृढ़ निश्चय से मुकाबला करना चाहिए। नीति को धीरे-धीरे बदलने का अब समय नहीं है। संसार में बड़ी तेजी से घटनायें घट रही हैं और ऐसे समय में हम आत्म-सन्तुष्टि से नहीं बैठ सकते। हमें जरूरी समझकर कर्म करना चाहिए; प्रगति और स्वतंत्रता की कीमत सदा सचेत रहकर चुकानी पड़ती है। एक मंगलकारी राज्य को सर्वप्रथम अपने नागरिकों की मनुष्यों के रूप में चिन्ता करनी चाहिए। मशीनों को मनुष्यों का दास समझना ही पड़ेगा उनका मालिक नहीं। कोई भी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था जो मशीनों को मनुष्यों की निस्बत अधिक महत्व देती है अवश्य ही विनाश और विध्वंस का कारण बनेगी।

२० दिसम्बर १९५३

शत्रु नंबर एक

श्रम द्वारा, पसीना बहा कर अपने जीविकोपार्जन के लिये कार्य पाने का अधिकार राज्य के प्रत्येक नागरिक को होता है। अगर राज्य लोगों को ऐसे ही आर्थिक सहायता देता रहे और उनके लिये कोई लाभप्रद धंधे का इंतजाम न करे तो यह व्यक्ति के लिये, और राष्ट्र के लिये भी, शारीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टि से गिरने वाली बात होगी। मनुष्य का गौरव ही यह है कि वह अपना शरीर, अपना दिमाग और अपना दिल जीविकोपार्जन के लिये लगाये। गांधीजी ने हमें "रोटी के लिये मेहनत" का मूल्य हमेशा पढ़ाया। सच तो यह है कि भारतीय दर्शन-शास्त्र का मूल तत्व ही यही है कि वह आदमी जो बिना कठिन परिश्रम किये हुए खाना खाता है, चोर है। यह स्वाभाविक ही है कि आज की आर्थिक योजनाओं में राष्ट्र के सभी रहने वालों को मुकम्मिल तौर पर काम में लगाना राष्ट्रीय विकास का बुनियादी उसूल माना जाता है। जब तक हम हिन्दुस्तान के प्रत्येक हृष्ट-पुष्ट नागरिक को पूरे तौर से धंधे में नहीं लगा देते तब तक हमारी सब स्कीमें और सभी योजनायें अर्थहीन और व्यर्थ रहेंगी। सच तो यह है कि राष्ट्र के सभी नागरिकों को पूरी तरह से काम में लगाने की योजना के बिना जनतांत्रिक प्रणाली पर आधारित एक स्थायी सरकार का बन जाना ही असंभव है। यदि हम अधिक उत्पादन के लिये बहुत योजनाएं बनायें पर इसकी फिकर न करें कि हमारी जनता को मुकम्मिल तौर से रोजगार धंधा मिले तो वह तो अपने राष्ट्रीय ढांचे को बालू की भीत पर खड़ा करने के समान ही होगा।

हिन्दुस्तान की मर्दुमशुमारी के आखिरी आंकड़ों से पता चलता है कि हमारे मुल्क की कुल आबादी ३५ करोड़ ६८ लाख है। इसमें से २५ करोड़ लोग खेती-बाड़ी में और १० करोड़ ७८ लाख लोग गैर-खेती वाले धंधों में लगे हुए हैं। यह कहना एक पुरानी बात को दोहराना ही होगा कि हमारे किसान साल के कई महीनों में अर्द्ध रूप से ही काम में रहते हैं। इसीलिए ही जरूरी है कि उन्हें कुछ सहायक धंधों में काम करने का मौका मिले जिनके द्वारा उनकी आज की बहुत कम आमदनी में कुछ इजाफा हो सके। फिर यह भी नहीं भूलना चाहिए कि इस वक्त हिन्दुस्तान की जमीन पर आबादी का बोझ बहुत अधिक है, और यह जरूरी है कि करोड़ों लोगों को खेती से हटाया जाय ताकि हम अपने देश की खेती को वैज्ञानिक ढंगों के इस्तेमाल से लाभप्रद बना कर उसका उपयोग कर सकें। रही गैर-खेतिहर आबादी की बात, तो इस सिलसिले में यह ध्यान में रखना चाहिए

कि हमारे देश के उद्योग-धंधों में ३ करोड़ ७६ लाख आदमी काम करते हैं, जिनमे से २५ लाख तो बड़े २ कारखानों में हैं और बाकी कारीगर और दस्तकार हैं। इन दस्तकारों की बड़ी संख्या गांवों में रहती है और वहां भी उनको पूरे वक्त का काम नहीं मिलता। वे मुश्किल से अपना पेट भर पाते हैं। १९५१ की मर्दुमशुमारी के मुताबिक दूसरे गैरकाश्तकारी धंधों में एक तो मद व्यापार का है, जिसमें २ करोड़ २२ लाख आदमी हैं, फिर 'सवारी-यातायात' का मद है, जिसमें ५६ लाख लोग लगे हुए हैं। तीसरे मद का शीर्षक 'विविध' है जिसमें घर के नौकर भी शामिल हैं और जिनमें करीब ४ करोड़ ३० लाख प्राणी लगे हुए हैं।

'व्यापार' के शीर्षक के अन्तर्गत जो लोग हैं वे अधिकतर छोटे-मोटे दूकानदार और दलाल हैं, और यदि हमारे देहाती भाई सहकारिता के आधार पर अपने उत्पादनों को बेचने लगें तो वे सबके सब अपने रोजगार से हाथ धो बैठेंगे। इसी-प्रकार 'विविध' के शीर्षक में भी काम करने वाले आंशिक रूप से रोजगारों में लगे हुए हैं, और उनके धंधों की कुछ बहुत व्याख्या भी नहीं की जा सकती। हिन्दुस्तान की जनसंख्या के धंधों का जो विश्लेषण ऊपर दिया गया है उससे हमारे देश की बेरोजगारी की भयंकर समस्या का, और उससे भी बढ़कर अर्द्ध-रोजगारी की समस्या का गम्भीर रूप प्रकट होता है।

हिन्दुस्तान के शिक्षित नौजवानों को काम-धंधे में लगाने का मसला अब खतरनाक हालत में पहुंच गया है। एक तरफ तो प्रदेश की सरकारें, और मरकजी हुकूमत भी, इस बात की कोशिश कर रही हैं कि हमारे शहरों में, और देहातों में भी, पढ़ाई-लिखाई का फैलाव हो। दूसरी तरफ पुराने ढांचे पर चले आनेवाले हमारे कालेज और स्कूल, हिन्दुस्तान में पढ़े-लिखे बेकारों की संख्या बढ़ा रहे हैं। यह पढ़े-लिखे बेकार नौजवान हमारे मुल्क में जम्हूरी तर्जेअमल के रास्ते में बड़े खतरे हैं। वह हमारे सामाजिक-आर्थिक ढांचे और राजनीतिक स्थायित्व तक की बुनियादों पर कुठाराघात करते हैं। अतः यह साफ है कि हमारे देहाती और शहरी, दोनों ही क्षेत्रों में बढ़ती हुई बेरोजगारी बराबर हमारी नई जीती हुई आजादी के लिये हिंसात्मक उपद्रवों का खतरा पेश करती है। सच तो यह है कि हमारा असल दुश्मन साम्यवाद नहीं है। साम्यवाद तो एक बराबर कायम रहने वाले मर्ज का—भूख और गरीबी का—एक प्रदर्शन ही है। हमारा शत्रु नंबर एक देश में बराबर चौड़ी होनेवाली बेरोजगारी औ[illegible] की खाई ही है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना ने अपनी रिपोर्ट में इस जरूरी समस्या पर एक पूरा अध्याय दिया है, पर आयोजन कमीशन अभी तक इस अति विकट समस्या का डट कर मुकाबला नहीं कर पाया है। राष्ट्रीय आयोजन कमीशन की रिपोर्ट

में जो अनुमान लगाये गये हैं उनके अनुसार नए छोटे और बड़े उद्योगों में ४ लाख और लोगों को रोजगार मिलना संभव है और बड़ी-बड़ी सिंचाई और बिजली की योजनाओं में ढाई लाख लोगों को काम पर लगाने का अनुमान लगाया गया है। फिर यह भी अन्दाज किया गया है कि पुराने तालाबों-कुओं और जलाशयों तथा अन्य छोटे सिंचाई-साधनों के मरम्मत करने और बनाने में डेढ़ लाख आदमियों को काम-धंधा मिल जाएगा। आयोजन कमीशन का यह भी अनुमान है कि बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के फलस्वरूप साढ़े सात लाख मनुष्यों को काम-धंधा मिल जाएगा। आशा है कि सरकारी और गैर-सरकारी तरीकों से जो मकानात और नई इमारतें बनेंगी उनमें एक लाख आदमियों को नौकरी मिलेगी। सड़कों के निर्माण में २ लाख आदमियों को काम पाने की आशा है। जहां तक कुटीर-उद्योगों का सवाल है, पंचवर्षीय योजना का अनुमान है कि उनके द्वारा २० लाख लोगों को नौकरी मिल जाएगी। यह भी संभव है कि—विशेष रूप से करघा-उद्योग के द्वारा—३० लाख लोगों को आंशिक रूप से धंधा प्राप्त हो जाएगा। स्पष्टतः लोगों को धंधों में लगाने के इन ध्येयों को बहुत ऊंचा नहीं कहा जा सकता। हद से हद हम उनको एक शुभ शुरूआत ही कह सकते हैं। हम सबको यह समझना चाहिए कि सभी नागरिकों को पूर्ण रूप से धंधों में लगाना कठिन कार्य है और उसके लिये हमें बड़े धैर्य के साथ शनैः शनैः अपने सामाजिक-आर्थिक ढांचे में संरचनात्मक परिवर्त्तन करना होगा।

अपनी बेरोजगारी की इस चक्करदार समस्या का आखिरी हल तो यही है कि हम अपने आर्थिक और शैक्षणिक ढांचे में कुछ गहरी और उग्र तब्दीलियां करें। प्रथम तो हमें हिन्दुस्तान में बहुत व्यापक भूमि सुधार करना चाहिए ताकि बहुत बड़े पैमाने पर भूमि पुनर्वितरण हो सके। आचार्य विनोबा भावे के अनुमान के अनुसार कुछ ही वर्षों में पांच करोड़ एकड़ भूमि भूमिहीन कृषि मजदूरों में बांटी जाएगी जिससे लगभग एक करोड़ खानदानों को धंधा मिल जाएगा। आयोजन-कमीशन ने भी सिफारिश की है कि किसी भी व्यक्ति के पास कितनी अधिक-से-अधिक भूमि रहने दी जाए, इसको शीघ्रातिशीघ्र निर्धारित कर देना चाहिए। इस प्रकार जो भूमि मिले उसपर उसके वर्तमा[illegible] भूमि जोतने वाले को मिल्कयत प्रदान कर दी जाय। दूसरे हमें अपने औद्योगिक ढांचे में इस प्रकार की [illegible] चाहिए जिससे उपभोक्ताओं के लिये सामान पैदा करने वाले उद्योगों का विकेन्द्रीकरण हो सके। जब तक हम छोटे पैमाने वाले भारत के ग्रामीण एवं कुटीर-उद्योगों को पुनर्जीवित करने के लिए हिम्मत के साथ नहीं आगे चलते तब तक अपने देश के कोटि-कोटि कंगाल, बुभुक्षित प्राणियों को पूरे तौर से रोजगार और धंधों में लगाना स्वप्नमात्र ही रह जाएगा। एक तरफ यदि हम छोटे

पैमाने वाले उद्योगों का विकास करने का प्रयास करें और दूसरी तरफ हम बड़े उद्योगों के क्षेत्रों को और उनके विकास को न रोकें, तो इसका अर्थ तो यही होगा कि हम देश में लोगों के जबरन बेकार रहने की जो समस्या है, उसके साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। आधुनिक विज्ञान की सभी जानकारियों से लाभ उठाकर हम अपने छोटे कुटीर-उद्योगों को जितना कार्य-कुशल बना सकें बनाना चाहिए। पर जब तक अपने अस्त-व्यस्त ग्रामीण एवं कुटीर-उद्योगों को पुनः-स्थापित करने के लिए हम सब इच्छाशक्ति और दृढ़ निश्चय के साथ आगे नहीं बढ़ते तब तक कल्याणकारी राज्य को स्थापित करने की दृष्टि से आर्थिक आयोजन की बात करना महज कोरी लफ़्फाजी ही समझी जाएगी। तीसरे, हमको शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल परिवर्त्तन करना है, ताकि हमारे नौजवान और नवयुवतियां हमारे शिक्षालयों में सीख सकें, और धनोपार्जन भी कर सकें, और आज जिस प्रकार वह सीखते हैं और भविष्य में नौकरी पाने की इच्छा के लिये 'आहें' भरते हैं, वह सिलसिला खत्म हो। गांधीजी ने जिस बुनियादी तालीम की नींव डाली थी हमको भविष्य में अपनी शिक्षा प्रणाली में वही ढांचा रखना होगा। अपने विद्यार्थी जीवन में हमारे बालक बालिकाओं को न केवल इतिहास, भूगोल, विज्ञान और नागरिक शास्त्र इत्यादि की ही शिक्षा मिलनी चाहिए वरन् उनको कुछ दस्तकारियों की भी शिक्षा दी जानी चाहिए जिनकी मार्फत वह स्कूल और कालेज में भी, और उसके बाद भी, अपना जीविकोपार्जन कर सकें। और अन्त में, हमें 'स्वदेशी' आंदोलन को पुनः आगे बढ़ाना है। हमें अपने पड़ोसियों द्वारा बनाये गये स्वदेशी सामान का ही इस्तेमाल करना चाहिए। हमको यह शोभा नहीं देता कि हम एसे स्वदेशी सामानों की ऊंची कीमतों की शिकायत करें, वरन् भातृभाव और देशभक्ति के भाव से प्रेरित होकर हमें ऐसे ही कुटीर उद्योगों के सामान का इस्तेमाल करना चाहिए।

अन्त में हम यह कहेंगे कि हमको शत्रु नंबर एक की ताकत को नजरबन्द नहीं करना चाहिए। यह शत्रु बराबर हमारे जनतंत्र को और सामाजिक ढांचे में शांतिपूर्वक परिवर्त्तन लाने के हमारे प्रयास को चुनौती दे रहा ह। वक्त हमारे पास कम है और वक्त की आज बड़ी कीमत है। इसीलिए ही जल्दी से बेरोजगारी, गरीबी और भुखमरी की समस्या को हम बहुत जरूरी समस्या के तौर पर हल करने का प्रयास करें। यदि हम देर करेंगे तो वह आत्मघातक और भयंकर सिद्ध होगी। हमें बेरोजगारी के खिलाफ 'जिहाद' बोल देना चाहिए। इसको लगभग "करो या मरो" वाला अर्थ ही देना चाहिए।

२० मई १९५३

गांव पंचायतों का अर्थशास्त्र

अपनी हाल ही की बैठक में कांग्रेस कार्य-समिति ने गांव पंचायतों के संबंध में एक प्रस्ताव पास किया। कार्य-समिति के इस कदम की देश में बड़ी सराहना की गई है। कार्यसमिति को "भारत के विभिन्न भागों में पंचायत पद्धति के उत्तरोत्तर विकास" को देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई है। "ये न सिर्फ भारत की पुरानी परम्पराओं के ही अनुकूल है, बल्कि वर्त्तमान स्थिति के उपयुक्त भी हैं। आधुनिक राज्य शनैः शनैः स्वभावतः केन्द्रीकरण की ओर अग्रसर होने लगते हैं। विकास की इस प्रवृत्ति में संतुलन लाने के लिए "स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का विकास किया जाना चाहिए जिससे देशवासी स्वयं देश के प्रशासन तथा सामाजिक, आर्थिक तथा न्याय संबंधी समाज के विभिन्न क्षेत्रों में भाग ले सकें।" इसका सबसे अच्छा उपाय यही हो सकता है कि "भारत के गांवों में पंचायतों का विकास किया जाय। इन पंचायतों को प्रशासनीय तथा न्याय संबंधी,दोनों ही तरह के काम करने चाहिएं। कार्य समिति विशेषतः न्याय पंचायतों की स्थापना का स्वागत करती है जिनसे अदालतों का भार कम होगा तथा काफी संख्या में छोटे-छोटे मामलों का मौके पर ही फैसला हो जाने से देशवासियों को न्याय सस्ता एवं शीघ्र मिल जाया करेगा।" "स्थानीय परिस्थितियों एवं परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए संपूर्ण देश में इस प्रकार की पंचायतों का विकास किया जाना चाहिए। ये पंचायतें संबंधित क्षेत्र का, बिना जाति-धर्म का विचार किये, पूर्ण प्रतिनिधित्व करें।"

हम कांग्रेस कार्यसमिति के इस प्रस्ताव को बहुत बड़ा महत्व देते हैं क्योंकि इससे एक बड़ी तात्कालिक जरूरत पूरी हुई है। आज ठोस और प्रजातांत्रिक आधार पर एक नए भारत की इमारत बनाने के लिये सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनीय तथा न्याय संबंधी शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के लिए एक साहसी नीति की आवश्यकता है। भारतीय संविधान के एक निदेशक तत्व में साफ कहा गया है कि राज्य "ग्राम पंचायतों का संघटन करने के लिए अग्रसर होगा, तथा उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हों।" कार्यसमिति का यह प्रस्ताव इस प्रकार की पंचायतों की स्थापना की ओर एक महान कदम है जो युगों से चली आ रही भारत की परम्पराओं तथा देश की अमर आत्मा के अनुरूप हैं। कल्याणी अधिवेशन में भी इस बात पर बहुत जोर दिया गया था कि दूसरी पंच-वर्षीय योजना

को "पंचायतों, ग्रामीण समुदायों, स्थानीय संस्थाओं तथा इसी प्रकार के अन्य समुदायों के सहयोग से बनाया जाय जिससे यह जनता की अपनी योजना बन सके तथा स्थानीय नेताओं को योजना के निर्माण तथा आगे चलकर इसके क्रियान्वित करने का पूरा उत्तरदायित्व संभालना चाहिए।" योजना आयोग ने आयोजन के लिए विकेन्द्रीकरण के इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया है तथा हाल ही में सभी राज्य सरकारों के पास एक इसी आशय का परिपत्र भेजा है जिसमें कहा गया है कि "वे योजनाओं के बनाने में स्थानीय स्वेच्छा का तथा इनके क्रियान्वित करने में जहां तक संभव हो अधिक से अधिक स्थानीय प्रयत्नों एवं साधनों का ही इस्तेमाल करें।"

लगभग सभी राज्य सरकारों ने अपने-अपने क्षेत्रों में ग्राम तथा न्याय पंचायतों की स्थापना के लिये कानून बना ही दिये हैं तथापि स्थानीय परिस्थितियों एवं परम्पराओं के अनुसार इन कानूनों में काफी हद तक असामनता है। अब यह निहायत ज़रूरी है कि इन पंचायतों के काम के संबंध में जो विभिन्न राज्यों ने अनुभव किये हैं उन्हें इकट्ठा किया जाय जिससे इन्हें सफलतापूर्वक प्रशासनीय एवं न्याय के क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण तथा राष्ट्रीय आर्थिक आयोजन के लिए प्रयोग में लाया जा सके। कुछ राज्यों में चुनावों के द्वारा इन पंचायतों का निर्माण होता है, कुछ में स्थानीय अधिकारीगण इसकी नियुक्ति करते हैं। कुछ ऐसे राज्य हैं जहां कुछ भाग का चुनाव होता है और कुछ सदस्य नियुक्त किये जाते हैं। दक्षिण भारत के पुराने अभिलेखों के अध्ययन से पता लगा है कि पुरातन पंचायतों का लगभग एक मत से ही चुनाव हुआ करता था और जहां ऐसा संभव न होता उस स्थान पर गांव के सबसे छोटे बच्चे से पर्ची उठवा कर इनका फैसला कर लिया जाता था। इस पद्धति को आधुनिक स्थितियों के अनुरूप कुछ परिवर्त्तन करके आज भी अपनाया जा सकता है। ग्रामीण समुदाय द्वारा चुनी गई नामों की एक सूची से पंचायतों की नियुक्ति की पद्धति का विकास किया जा सकता है। विभिन्न राज्यों में ग्राम तथा न्याय पंचायतों में भी आपसी मतभेद काफी मात्रा में हैं। कुछ राज्यों में न्याय पंचायतें ग्रामीण पंचायतों की उपसमितियों के रूप में हैं जब कि कुछ राज्यों में इन दोनों प्रकार की पंचायतों का संगठन बिल्कुल अलग-अलग तरीकों से होता है और इनमें मुश्किल से ही आपस में कोई संबंध रहता है। गांव पंचायतों की प्रशासनीय तथा कर लगाने की शक्तियां भी देश के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न हैं। इन सभी विषयों पर कार्यसमिति द्वारा नियुक्त की गई उपसमिति को गहरा अध्ययन करने की तथा ठंडे दिल से सोचने की जरूरत है।

अतीत काल से भारत गांव पंचायतों का घर रहा है। इनका विस्तृत वृत्तांत वेदों, जातकों, धर्म सूत्रों, महाभारत, मनुस्मृति, शुक्रनीति-सार, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मुस्लिम शासकों व ईस्ट इंडिया कम्पनी के अभिलेखों में मिलेगा। बहुतेरे खानदान और साम्राज्य उठे और मिट्टी में मिल गये परन्तु ये छोटे-छोटे गणतंत्र लगभग ज्यू-के-त्यूं ही जीवित बने रहे। ब्रिटिश शासन काल ही में इनके संगठन को गंभीर ठेस लगी क्योंकि विदेशी शासकों को लालच के कारण भूमि कर इकटठा करने के लिए एक अति केन्द्रित व्यवस्था एवं पद्धति की जरूरत थी। परन्तु जनप्रिय सरकारें पुनः इन बिखरे हुए तारों को जोड़ रही है। हमारे दिमागों में किंचित मात्र भी संशय नहीं है कि गांव पंचायतें फिर राष्ट्रपिता के सपनों के नये भारत के निर्माण में एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगी। पिछली कुछ शताब्दियों में पंचायतों के बुरे दिन आ गये तथा लोगों ने इनकी कार्यकुशलता में विश्वास खो दिया। इसलिए पंचायतों को गांव समुदाय में वही पुराना स्थान एवं सम्मान हासिल करने में अभी कुछ समय लगेगा, तथापि निराशा या साहस तोड़ने की कोई बात नहीं।

हम गांव पंचायतों के एक पहलू पर खास जोर देना चाहेंगे। प्राचीन भारत में पंचायतों का बड़ा ऊंचा स्थान था; लोग उनका बड़ा सम्मान करते और महत्व समझते थे क्योंकि पंचायतों को दैवत्व का प्रतिरूप समझा जाता था। "पंच परमेश्वर" इन ग्रामीण समुदायों का महान आदर्श था। पंचों का स्वयं ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में सम्मान किया जाता था। इतने मान और सम्मान का विशेष आधार पंचों के चुनावों या वचन में एकमत का सिद्धांत अपनाया जाता था। गांव की बैठक में, विभिन्न जातियों और समुदायों से लगभग एकमत से गांव के बुजुर्गों का चुनाव होता था। उस समय में आधुनिक दलीय नीति की मुश्किल से ही कोई बुराई मौजूद थी। जैसा कि हमने पहिले इस ओर इशारा किया है, जब मतों में भिन्नता होती तो झगड़े को परची डाल कर निपटा लिया जाता। यह पद्धति दक्षिण भारत में विशेषतः बहुत प्रचलित थी। हमारे विचार में मतैक्य का ही वह सिद्धांत है जो प्राचीन भारत में पंचायतों की आत्मा था और यही वह मतैक्य और सामूहिक सद्भावना का सिद्धांत है जिसे वर्तमान परिस्थितियों में पुनर्जीवित करने की जरूरत है। उन पंचायतों को जिनका सरपंच एकमत से चुना गया हो अधिक शक्तियां एवं अधिकार देकर लोगों में मतैक्य और सद्-भावना को बढ़ावा दिया जा सकता है। इन पंचायतों को प्रथम श्रेणी की पंचायत कहा जा सकता है। तथा जो पंचायतें एकमत से चुनी न हों ऐसी पंचायतों को दूसरी श्रेणी की पंचायतें समझा जाय, जिनके पास प्रथम श्रेणी की पंचायतों के

मुकाबले कम शक्ति तथा कम अधिकार हों। इनका स्थान भी स्वभावतः उनसे नीचा होगा। इस प्रकार की पद्धति में विभिन्न गांव पंचायतों में स्वस्थ वातावरण पैदा होगा तथा आगे चलकर हमारी इस प्राचीन भूमि में विकेन्द्रित प्रजातंत्र के एक ठोस आधार का उदय होगा।

पश्चिम के प्रजातंत्र में आज अनगिनत बुराइयां आ गई हैं। यह बहुत अधिक कैन्द्रित एवं यंत्रीकृत हो गया है। भारत अपनी प्राचीन परम्परा के अनुरूप मिश्रित एवं विकेन्द्रित प्रजातंत्र के एक नये आदर्श का विकास कर पश्चिमी दुनिया को कहीं बेहतर राह दिखा सकता है। गांधीजी ने कहा था "केन्द्र में बैठे २० आदमियों से सच्चा प्रजातंत्र नहीं चल सकता, इसके चलाने के लिये तो नीचे से प्रत्येक गांव के लोगों को काम करना होगा।" प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक आयोजन की सफलता एक बड़ी सीमा तक भारत में गांव पंचायतों के सुदृढ़ एवं स्वस्थ आधारों पर आधारित होने पर मुनहस्सिर करती है। इसीलिए कांग्रेस की पंचायत समिति की रिपोर्ट और सुझावों की ओर देश की बड़ी दिलचस्पी एवं उत्सुकता से आंखें लगी हुई हैं।

७ जून, १९५४

"नवीकरण" का अर्थशास्त्र

बजट पर आम बहस का जवाब देते हुए वित्त मंत्री श्री चिन्तामणि देशमुख ने भारतीय उद्योगों के नवीकरण करने की नीति के बारे में कुछ बातें कहीं। उन्होंने इस बात की ओर इशारा किया कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में, अनेक कारणों से बाजार पर खरीददार का असर है जिसका नतीजा यह हुआ है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में आपसी होड़ और भी तेज और मुश्किल हो गई है। इसीलिए पुरानी मशीनों के स्थान पर बेहतर और उन्नत मशीनें लगाने की समस्या अब एक अहम सवाल है। वित्त मंत्री महोदय ने आगे चलकर यह भी कहा कि "थोड़े समय के लिये काम से अलग हुए मज़दूरों पर जो मुसीबतें हैं उन्हें दूर करने की हर मुमकिन कोशिश की जाएगी, परन्तु कोई भी ऐसी चीज नहीं की जानी चाहिए जो सम्पूर्ण प्रौद्योगिक उन्नति में बाधक बन रोजगार के बढ़ने में रोड़ा बन जाए।" उपर्युक्त कथनों को लेकर कांग्रेस संसदीय दल तथा साथ ही साथ मजदूर तथा औद्योगिक क्षेत्रों में भी वाद-विवाद छिड़ा हुआ है। हम रचनात्मक आलोचना के विचार से किये गये ऐसे किसी भी वादविवाद का स्वागत करते हैं क्योंकि इसका संबंध राष्ट्रीय आर्थिक आयोजन के एक बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू से हैं।

पहले विश्व-महायुद्ध के बाद जर्मनी को, अपने उद्योगों से क्षय एवं अदक्षता दूर करने के लिये, एक नये आधार पर पुर्ननिर्माण करना पड़ा। पुर्ननिर्माण का जो तरीका जर्मनी ने अपनाया यह "नवीकरण" के नाम से पुकारा गया जोकि युद्ध के बाद संपूर्ण संसार में आम हो गया।

आजकल के अर्थशास्त्र की भाषा में नवीकरण का मतलब आधुनिकीकरण, वैज्ञानिक प्रबन्ध एवं संबंधित उद्योगों के एकीकरण से लिया जाता है। परन्तु यह हमारी बहुत बड़ी भूल होगी यदि इसके विस्तृत अर्थ न समझकर हम तंग और संकुचित अर्थ लगायें। हर आदमी ही औद्योगिक समस्याओं को एक "वैज्ञानिक" अथवा तर्कयुक्त ढंग से सोचता है अतः नवीकरण का बिना सोचे-समझे विरोध करना बहुत अवैज्ञानिक एवं गलत होगा। परन्तु हमें इस बात को साफ-साफ समझने की भी पूरी कोशिश करनी चाहिए कि नवीकरण का मतलब "संकुचित" और अंधविश्वासपूर्ण नहीं होना चाहिए। नवीकरण का एकमात्र उद्देश्य औद्योगिक एवं आर्थिक समस्याओं के प्रति, जो स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार

अलग-अलग इलाकों की अलग २ होती हैं, एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखना है। हो सकता है संयुक्त राज्य अमरीका जैसे देश में जहां पूंजी की बहुतायत और मजदूरों की कमी है नवीकरण के मातहत एक विशेष प्रकार का औद्योगिक संगठन ठीक हो सकता है परन्तु नवीकरण का अर्थ भारत जैसे देश में, जहां मजदूरों की बहुतायत और पूंजी की कमी है, अलग किस्म का औद्योगिक संगठन हो सकता है। अतः प्रत्यक्ष है, अमरीका के नमूने पर भारत के उद्योगों का नवीकरण करना पूर्णतः असंगत होगा।

भारत में देश का आर्थिक आयोजन करनेवालों के सामने जो बड़ा सवाल है वह गांवों और कस्बों में फैली बेरोजगारी, अथवा अर्द्धरूप से रोजगारों में लगी श्रमशक्ति को इस्तेमाल करने का सवाल है। सचाई तो यह है, हमारी व्यर्थ पड़ी श्रमशक्ति ही वास्तविक राष्ट्रीय पूंजी है जिसे देश का अतिरिक्त धन बढ़ाने के लिये इस्तेमाल किया जाना चाहिए। गांधीजी इस बात को मानते थे, कि "जबकि काम पूरा करने के लिये आदमी बहुत कम हों तो मशीनों का प्रयोग अच्छा है।" "ऐसी स्थिति में, जैसा कि भारत में है, जब काम के मुकाबले में काम करने वाले अधिक हों, यह एक बुराई है।" अतः गांधीजी मशीन विशेष के खिलाफ नहीं थे। वे मशीनों के "अधाधुंध" तथा "बिना सोचे समझे प्रयोग" के खिलाफ थे। गांधीजी ने यहां तक कहा था: "मैं ऐसी मशीनों का स्वागत करूंगा जो झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों के भार को कम करें।" "यदि गांवों में घर-घर में बिजली हो जाए तो मैं इस बात के विरुद्ध नहीं हूंगा कि गांववाले अपने औज़ार बिजली से चलाएं।" अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के महानिर्देशक श्री डेविड मोर्स ने अपनी १९५३ की सालाना रिपोर्ट में कहा है, "ऐसे देशों में जहां मजदूर काफी हैं तथा पूंजी महंगी एवं कम है, अमरीका तथा कनाडा की तरह के उपज के कम मजदूरों तथा ज्यादा पूंजी वाले उत्पादन के तरीके अपनाना ठीक नहीं।" अतः भारत जैसे देश में औद्योगिक पुनर्गठन का सही नियम, पूर्ण रोजगार तथा ज्यादा से ज्यादा उत्पादन होना चाहिए। रोजगार बढ़ाने का कोई भी ऐसा उपाय जिससे देश के प्रति-व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि न होती हो, भारत जैसे देश के लिये जिसकी अर्थ-अवस्था पिछड़ी हुई हो, नुकसानदायक होगा। इसके साथ ही कोई भी उपज बढ़ाने का ऐसा आयोजन, जिसमें रोजगार देने तथा देश के लाखों बेकारों एवं अर्ध-बेकारों को काम देने की सुविधा व अवसर न जुटाए गए हों, एक प्रकार से बुरी से बुरी किस्म का राष्ट्रीय अपराध होगा। अतः हमारे आर्थिक कष्टों का निवारण उसी हालत में हो सकता है जब पूर्ण रोजगार तथा अधिक उत्पादन में एक प्रकार का संतुलन रखा जाए।

ऐसा सोचना गलत है कि प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने के लिय बड़े पैमाने पर उद्योगों का चलाया जाना ही निहायत जरूरी है, और इसके बिना उत्पादन बढ़ ही नहीं सकता। दरअसल आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिक उन्नति के इस युग में, केन्द्रीकरण पूरी तरह अवैज्ञानिक धारणा है। जैसाकि प्रधान मंत्री ने हाल ही में कहा कि प्रौद्योगिक क्रांति के दौरान बड़े २ कारखाने इसलिए बने क्योंकि क्रांति को बड़ी हद तक शक्ति के लिये कोयले पर ही मुनहसिर रहना पड़ा। बिजली की ईजाद के साथ बड़े पैमाने पर विकेन्द्रीकरण न केवल संभव हो गया है बल्कि वांछनीय भी। यदि अगले १० या २० वर्षों में अणुशक्ति का प्रयोग नागरिक एवं उद्योगों के लिये मुमकिन हो सका तो उद्योगों का विकेन्द्रीकरण बाध्य हो जाएगा। अणुशक्ति के युग में बड़े पैमाने पर मशीनों का प्रयोग वास्तव में बहुत अवैज्ञानिक और तर्क-रहित होगा। हम इससे एक कदम और आगे जायेंगे। आज के आधुनिक विज्ञान के जमाने में भी, एकमात्र धन का उत्पादन बढ़ाने के विचार से ऐसे साधन इस्तेमाल करना, जिनमें मजदूरों की बहुत बचत होती हो, अबुद्धि-मत्तापूर्ण ही नहीं बल्कि अमानवीय भी है। बड़े ताज्जुब की बात है कि अमरीका जैसे देश में भी जहां इतनी अधिक उपज है लगभग ३७ लाख आदमी राज्य द्वारा बेरोज़गार मजदूरों की तरह पाले जाते हैं। "दान-खाते" वाले इन बेरोज-गारों की बड़ी बुरी हालत है तथा वे न सिर्फ शारीरिक एवं मानसिक रूप से ही बुरी तरह कष्ट उठाते हैं बल्कि नैतिक एवं आध्यात्मिक रूप से भी। हम भारत में एक ऐसी औद्योगिक विकेन्द्रित अर्थ-अवस्था लाना चाहते हैं जो केवल कुछ आदमियों को "दान" न देकर सभी को काम देगी। हम दक्षता एवं प्रौद्योगिक उन्नति के विरूद्ध नहीं हैं बशर्तेकि इनसे मानव कल्याण एवं विकास होता हो। उत्पादन के मूल्य का केवल यान्त्रिक तरीकों से हिसाब लगाते समय हमें यह भी देखना होगा कि बेकारी के रूप में हम कितनी बड़ी कीमत अदा कर रहे हैं, इसके परिणामस्वरूप समाज को कितनी पीड़ा हो रही है। दूसरे शब्दों में हमारा आदर्श न केवल "मशीनों की दक्षता" बल्कि "आर्थिक दक्षता" भी होना चाहिए। एक-तरफा प्रौद्योगिक उन्नति का परिणाम यह होता है कि समाज में "धन इकट्ठा होता चला जाता है तथा आदमी गिरता जाता है।"

इन दिनों हम "पूंजी निर्माण" की भारी जरूरत की बड़ी चर्चा सुनते हैं। हमें बड़े-बड़े आर्थिक "विशेषज्ञों" द्वारा बताया जाता है कि आर्थिक विकास, विशेषतः एक आर्थिक रूप से पिछड़े हुए देश में, उस समय तक संभव नहीं जब तक उद्योगों में लगाने के लिये पूंजी न हो। वास्तव में एक बड़ी सीमा तक यह सत्य है। परन्तु इस विचार को अंधविश्वास से एक अमिट आर्थिक उसूल मानने

से कोई फायदा नहीं। मेरी समझ में "पूंजी निर्माण" से अधिक तात्कालिक आवश्यकता एक ऐसे संगठन की है जिससे भारत की व्यर्थ पड़ी हुई जन-शक्ति तरक्की के कामों में लगाई जा सके। साफ है कि इस बेकार पड़ी जन-शक्ति के उपयोग के लिये भी पूंजी की कुछ मात्रा जरूरी होगी। लेकिन यह बात भी उतनी सत्य है कि भारत में हमारी वास्तविक पूंजी "थोपी हुई अकर्मण्यता" है जिसे बहुत लाभपूर्ण ढंग से अपने सपनों के नए भारत के नव-निर्माण के लिये "काम करने की प्रेरणा" के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। अतः "पूंजी के निर्माण" के बारे में बहुत ज्यादा बातें करते रहने की बजाय "मजदूर संगठन" की समस्याओं के बारे में सोचना अधिक उचित होगा। हमारे उद्योगपतियों तथा आर्थिक "विशेषज्ञों" ने "पूंजी निर्माण" के प्रश्न को अपना बड़ा काल्पनिक साथी मान रखा है और उसे एक बड़ी गूढ़ रहस्यमयी चीज बना दिया है। अब समय आ गया है कि बुद्धिमत्तापूर्ण एवं रचनात्मक आलोचना द्वारा इस रहस्य पर पड़ा पर्दा हटाया जाए।

कहा जाता है कि हमारे देश में "मिश्रित अर्थ-अवस्था" है जिसमें व्यक्तिगत क्षेत्र की उन्नति एवं विस्तार के लिये काफी गुंजाइश होनी चाहिए। यह भी कहा जाता है कि मिश्रित अर्थ-अवस्था में नवीकरण करीब २ आवश्यक ही है। साफ बात यह है कि हमें "मिश्रित" अर्थ-अवस्था कहना ही कोई बहुत उपयुक्त नहीं लगता, क्योंकि इससे विचारों में उलझन पैदा होती है जिसके कारण निर्णय करने में भी दिक्कत होती है।

बीच की "सुनहरी" अर्थ-अवस्था के लिए जिसका हम सपना देख रहे हैं संभवतः "संतुलित" या "बीच की" अर्थ-अवस्था बेहतर और अधिक उपयुक्त शब्द होगा। हम उपभोग की वस्तुओं के विकेंद्रीकरण तथा कुंजी उद्योगों के राष्ट्रीकरण की नीति पर चल कर अधिनायकवाद एवं पूंजीवाद दोनों ही चरम-सीमाओं को छोड़ कर एक बीच का रास्ता अपनाना चाहते हैं। बिना संदेह हमारे दिमाग में देश की मौजूदा स्थितियों में इस प्रकार की "बीच की अर्थ-अवस्था" ही भारत के लिए सबसे अच्छी है। कुछ आलोचक कहते हैं, "देश में ग्रामीण और कुटीर-उद्योगों को बढ़ावा देकर हम केवल गरीबी बांट देंगे।" देश के उद्योगपति इसी बात को अब घरेलू तथा छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास में रोड़ा डालने के लिए अपना नारा बनाये हुए हैं। हम बड़े साफ तरीके से इसका खंडन करते हैं। हमें पूरा यकीन है कि यदि घरेलू उद्योगधंधों के निर्माण क्षेत्र में आधुनिकतम प्रौद्योगिक उन्नति एवं खोजों को अपनाया जाय तो इनकी उत्पादन क्षमता एवं दक्षता

काफी बढ़ सकेगी । विश्वविख्यात उद्योगपति हैनरी फोर्ड मानते हैं कि "बहुधा बड़े-पैमाने पर चलाया गया कारखाना कम खर्चीला नहीं होता" तथा "बड़े व्यापार को, न सिर्फ कम लागत के विचार से बल्कि इस विचार से भी कि उत्पादन का धन उन्हीं लोगों पर व्यय हो जिन्होंने वह चीज पैदा की है, सम्पूर्ण देश में बिखरा होना चाहिये ।" तो हम हम ईमानदारी से "गरीबी" भी बांटने के हक में हैं ताकि देश के धन को शराब पार्टियों, दावतों, बड़ी २ इमारतों एवं विलासपूर्ण कामों पर खर्च न होने दिया जाए । गांधीजी के सपनों का नया भारत अब अपना आकार धारण कर रहा है तथा गरीब और अमीर के बीच पड़ी खाई अब अधिक बर्दाश्त नहीं की जा सकती ।

५ अप्रेल, १९५४

आराजियों की उच्चतम सीमा

हमारी राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि भारत की भूमि-नीति का एक मौलिक सिद्धान्त यह होना चाहिए कि "एक व्यक्ति के पास कितनी अधिक-से-अधिक भूमि रहे इसकी सीमा निश्चित हो।" स्वभावत: आराजियों की यह उच्चतम सीमा प्रत्येक राज्य की भूमि-स्थिति और उसके भूमि इतिहास के आधार पर ही निश्चित होगी। इसीलिए योजना आयोग ने एक केन्द्रीय भूमि सुधार समिति नियुक्त की है, जिसका दायित्व यह है कि वह तमाम राज्यों को वर्तमान आराजियों की उच्चतम सीमा निश्चित करने के वास्ते आवश्यक आंकड़े एकत्रित करने में सहायता दें। योजना आयोग ने बड़ी-बड़ी व्यक्तिगत आराजियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है, । प्रथम, वह आराजियां जिनका प्रबन्ध इतने सुधरे तरीके से होता है कि यदि उनको तोड़ दिया जाए तो उससे खाद्यान्न उत्पादन में कमी हो सकती है, और द्वितीय, वह जो सुघरे खाद्यान्न उत्पादन की दृष्टि से आवश्यक स्तर पर खरी नहीं उतरतीं। द्वितीय श्रेणी की आराजियों के लिए योजना आयोग ने यह सिफारिश की है कि राज्य-सरकारें शीघ्रातिशीघ्र भूमि-प्रबन्ध सम्बन्धी कानून बनावें। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भी अपने आगरा अधिवेशन में कहा था कि "यह आवश्यक है है कि प्रगति की रफ्तार को तेज किया जाए। रफ्तार को विशेष रूप से भूमि-सुधार के क्षेत्र में तेज करना चाहिए।" महासमिति ने "भारत में गहरे भूमि सुधारों को लागू करने के कार्य को सबसे अधिक महत्त्व" प्रदान किया। समिति ने यह भी कहा: "यद्यपि कई राज्य-सरकारों ने इस दिशा में प्रगति की है, पर भूमि के असली जोतने वालों को भूमि का मालिक बनाने के लिए अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है।" इसीलिए महासमिति ने तमाम राज्य-सरकारों से कहा कि वे आवश्यक भूमि आंकड़ों को संकलित करें व व्यक्तिगत आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के लिए तत्काल कदम उठायें ताकि जहां तक संभव हो भूमि का भूमिहीन मजदूरों में पुनर्वितरण किया जा सके।

हमें कोई संशय नहीं है कि भारत सरकार और तमाम राज्य-सरकार गहरे भूमि सुधारों को लागू करने की ओर अपना पूरा ध्यान और प्राथमिकता प्रदान करेंगी और विशेषरूप से वे उन पहलुओं पर तवज्जह देंगी, जिनसे भूमि के असली जोतन वाले भूमिहीनों को भूमि प्राप्त होगी। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि भूमि के

पुनर्वितरण के लिए पर्याप्त भूमि तब तक नहीं मिल सकती जब तक वतमान आराज़ियों की उच्चतम सीमा नहीं निर्धारित कर दी जाती। केवल भविष्य के लिए आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित करना मात्र ही पर्याप्त नहीं है और न ही उससे हमें संतोष करना चाहिए। वर्तमान बड़े-बड़े फार्म, जो कहीं सौ और कहीं हजार एकड़ या इससे अधिक के हैं, को अछूता छोड़कर भविष्य की आराजियों पर उच्चतम सीमा निर्धारित करना उचित नहीं होगा।

हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि सभी राज्यों में एक ही आधार पर आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित की जाए। निश्चिय ही विभिन्न क्षेत्रों में और भूमि की उर्वरा शक्ति के अनुरूप आराजियों की उच्चतम सीमा अलग-अलग होगी। हम यह नहीं चाहते कि प्रारम्भ में यह उच्चतम सीमा बहुत कम निश्चित हो। यह उचित न होगा कि हम भूस्वामियों के साथ तो बड़ी सख्ती के साथ व्यवहार करें, पर राष्ट्रीय जीवन के अन्य सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में गहरी विषमताओं को चलने दें। हमें इससे कोई एतराज न होगा यदि प्रारम्भ में आराजियों की उच्चतम सीमा निश्चित करने में उदारता से काम किया जाए। पर वर्त्तमान आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के मसले को बिल्कुल भला देना या छोड़ देना बहुत ही अनचित होगा। जब हमारे देश में ४५ लाख भूमिहीन कृषक मौजूद हैं तो इस अवस्था में जमींदारों को क्या अधिकार है कि वे अपने कब्जे में सैकड़ों एकड़ भूमि रखें? भूमि ईश्वरप्रदत्त एक देन है और उसे मानव न तो बढ़ा सकता है और न घटा ही सकता है। इसीलिए ही प्रारम्भ में हमें आर्थिक असमानता की समस्या को हल करने के लिए भूमि के मोर्चे पर ही प्रहार करना होगा। दूसरे मोर्चों पर भी आर्थिक असमानताओं को अछूता नहीं छोड़ा जाएगा। इन विषमताओं को संपत्ति और सम्पदा के दूसरे क्षेत्रों में भी हटाना होगा। गत २५ अक्तूबर से देश में जो सम्पदा-कर अधिनियम लागू हुआ है, वह इस दिशा में पहला कदम है। इसके बाद हमें ऐसे ही और भी कदम उठाने होंगे ताकि देश में आर्थिक समानता स्थापित हो और आज संपत्तिवालों और सर्वहाराओं में जो दीवाल तनी हुई है, वह खत्म हो।

भूमि की उच्चतम आराजी को निश्चित करने में हमें कुछ नुक्तों को अपने मस्तिष्क में रखना होगा। सहकारी आधार पर जो भूमि जोती जाती है, उसे हम विशेष सहूलियत प्रदान कर सकते हैं। संयुक्त परिवारों की प्रथा को नष्ट-भ्रष्ट होने से बचाने के लिए भी एक परिवार के पास रहने वाली भूमि से तिगुनी भूमि संयुक्त परिवारों के पास रहने दी जा सकती है। आराजियों की उच्चतम

सीमा निर्धारित करने के पश्चात जो भूमि दूसरों को दी जाती है, उनसे उसके लिए मुआवजा वसूली २५ या ३० वर्ष के अर्से में की जा सकती है और उसके लिए एक भूमि आयोग बनाया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के बाद जितनी भूमि प्राप्त हो, उस सब का प्रबंध राज्य अपने हाथ में ले ले और मुआवजा वसूल करने वगैरह का सवाल ही न खड़ा हो। जैसा योजना आयोग ने सुझाव दिया है, राज्य ऐसी भूमि आराजियों को निश्चित शर्तों के अनुसार काश्तकारों को जोतने के लिए दे दे और उनसे कहा जाय कि वह सालाना लगान जमींदारों को किसी सरकारी एजेंसी द्वारा देते रहें। इस प्रबंध के अनुसार यह संभव हो सकता है कि हम ग्रामीण मजदूरों की लाखों एकड़ भूमि वितरित कर दें और मुआवजा देने की समस्या ही न उठे।

आचार्य विनोबा भावे के भूमिदान यज्ञ से देश में उचित भूमि सुधार कानून बनाने के लिए आवश्यक वातावरण पैदा हो गया है। वास्तव में लोगों के दिमाग तो अब इस बात के लिए भी तैयार हो गए हैं कि आराजियों की न महज उच्चतम सीमा ही निर्धारित हो, वरन बड़े खेतों के लिए एक न्यूनतम सीमा भी तय हो जाए। विनोबाजी का तो यह मत है कि आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित कर देने मात्र से ही भमिहीन कृषकों में पुर्नवितरण के वास्ते पर्याप्त भूमि नहीं प्राप्त हो सकेगी। उनका यह विचार है कि अब राज्य को बड़े खेतों की एक न्यूनतम सीमा निश्चित कर देनी चाहिए। उदाहरणार्थ, राज्य प्रत्येक उस परिवार को जो अपने परिश्रम से ही भूमि जोतने को तैयार हो, ५ एकड़ भूमि प्रदान करे। उच्चतम सीमा की समस्या पर तभी विचार किया जाय, जब तमाम खेती करने वाले परिवारों को इस प्रकार भूमि दे देने के बाद अतिरिक्त भूमि उपलब्ध हो। इन सब बातों का मतलब यही है कि इस समय देश बड़े गहरे भूमि सुधारों के लिए तैयार है और उन भूमिसुधारों में जरा भी देर करना, भारत की सामाजिक और आर्थिक प्रगति के महान् कार्य के लिये बहुत हानिकारक होगा।

हम सबों को यह भली भांति और सदा के लिए समझना होगा कि हमारी राजनीतिक आजादी का सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता के बिना कोई खास मतलब न होगा। आर्थिक स्वतन्त्रता हम धनिकों और निर्धनों के बीच जो बहुत चौड़ी खाई है उसे मूंद कर, और वर्त्तमान समाज में जो घोर विषमताएं दिखलाई पड़ती हैं, उनको खत्म कर, प्राप्त कर सकते हैं। हमें अपने देश के कोटि-कोटि देशवासियों को, जिन के पास आज पर्याप्त कार्य और जीवनयापन के पर्याप्त

साधन नहीं हैं, और अधिक काम-धंधा प्रदान करना होगा। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भूमि का और राष्ट्रीय संपत्ति का पुनर्वितरण करने के लिए गहरे कदमों को उठाना नितांत आवश्यक है। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक राज्य सरकार इस प्रश्न की ओर एक बहुत ही आवश्यक समस्या के तौर पर देखेगी और इस संबंध में बिना समय खोये सभी आवश्यक कदम उठायेगी।

२० अक्तूबर, १९५३

भूदान और आर्थिक क्रांति

हाल ही में बोध गया में हुए सर्वोदय सम्मेलन का कई दृष्टियों से विशेष महत्व है। इस साल सम्मेलन का रूप बहुत प्रतिनिधित्वपूर्ण था; देश के सब हिस्सों से हजारों रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं के अलावा इसमें राष्ट्रपति, उपराष्ट्र-पति और प्रधान मंत्री शरीक हुए। इसकी कार्यवाही में कई केंद्रीय और राज्य-मंत्रियों, लगभग एक दर्जन संसद् सदस्यों और कांग्रेस तथा प्रजासमाजवादी दल के महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधियों ने भी हिस्सा लिया। अपने भूदान यज्ञ से आचार्य विनोबा भावे अब ठीक ही एक बड़ी आर्थिक क्रांति के प्रतीक बन गए हैं जिसके द्वारा वे शांतिपूर्ण और जनतांत्रिक तरीकों से राजनीतिक आजादी का का अर्थ परा करना चाहते हैं। जैसा सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव में संकेत किया गया, जिस अहिंसक क्रांति को विनोबा भावे भारत में १९५७ के अन्त तक लाना चाहते हैं, भूदान उसका केवल पहला कदम है। सन १७५७ में प्लासी की लड़ाई से भारत में ब्रिटिश राज्य प्रारम्भ हुआ; सन् १८५७ में भारत की जनता ने विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह किया और इस देश में राजनीतिक क्रांति की नींव रखी। आचार्य विनोबा की हार्दिक इच्छा है कि सन् १९५७ में भारत में शांति-पूर्ण आर्थिक क्रांति की फतह होनी चाहिए। स्वाभाविक ही भूदान यज्ञ का इस क्रांतिपूर्ण आन्दोलन में प्रमुख स्थान होगा; लेकिन जीवन के आधारभूत मूल्यों में पूर्ण परिवर्तन द्वारा समाज के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में आर्थिक समानताएं लाने के लिए इस देश के औद्योगिक संगठन के ढांचे में महत्वपूर्ण तब्दीलियों की जरूरत होगी। सर्वोदय सम्मेलन का निश्चित मत था कि "जनता की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिये" केवलमात्र साधन "एक स्वावलम्बी विकेंद्रित अर्थ-अवस्था" है। जहां तक भूमि-नीति का ताल्लुक है, सम्मेलन में भूदान में प्राप्त हुई जमीन को भूमिहीन किसानों में शीघ्र बांटने की जरूरत पर बहुत जोर दिया गया। अब तक प्राप्त हुई लगभग २५ लाख एकड़ में से एक लाख एकड़ से भी कम भूमि जनता में बांटी गई है। भूमि-वितरण की धीमी रफ्तार का प्रमुख कारण कई कानूनी मुश्किलात तथा रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं की कमी रही है। इसलिए भमि के पुर्नवितरण को तीव्र करने के सम्मेलन के फैसले का हम स्वागत करते हैं। विनोबाजी ने १९५७ के अन्त तक ५ करोड़ एकड़ भूमि प्राप्त करने और उसे फिर से बांटने का उद्देश्य निश्चित किया है। यकीनन इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जनता के सब भागों की स्वेच्छापूर्ण तथा सच्ची मदद की जरूरत होगी।

भमि-सुधारों के काम में कानूनों का क्या महत्त्व होना चाहिए इस संबंध में सम्मेलन में मुख्तलिफ रायों का इजहार किया गया। कुछ नेताओं का विचार था कि भारत की भूमि-समस्या को सुलझाने के लिए भूदान आन्दोलन कानून की मदद के बिना ही समर्थ होगा। उन्होंने यहां तक कहा कि अगर कानून विचार-परिवर्त्तन और हृदय परिवर्तन के अहिंसात्मक तरीके में दखलअन्दाज होगा तो इससे भूदान का उद्देश्य ही खतरे में पड़ जाएगा। कुछ अन्य लोगों का विचार था कि कुछ महत्वपूर्ण कानून बनाए बिना भूमि-सुधार नहीं किए जा सकते। हमारे विचार में भदान आन्दोलन और कानूनी ढंग में कोई स्वाभाविक विरोध नहीं है; दोनों अपने एक ही उद्देश्य की पूर्त्ति में एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। आचार्य विनोबा ने अपने भूदान और संपत्तिदान आन्दोलनों द्वारा इस देश में अहिंसात्मक आर्थिक क्रांति लाने के महान् उद्देश्य में बड़ी सहायता की है। लेकिन लोक-प्रिय और जनतांत्रिक राज्य सरकारें भूमि के पुनर्वितरण का सारा भार विनोबा जी के कंधों पर डालकर अपनी जिम्मदारियों से छुटकारा नहीं पा सकतीं। भूमि के वास्तविक जोतने वालों को उसका स्वामी बनाने के लिये वे आचार्य विनोबा से सलाह-मशवरा करके कानून बना सकती हैं। असल में कई राज्य-सरकारों ने भूमिहीन किसानों को भूदान में प्राप्त हुई भूमि देने की सुविधा करने के लिये पहले ही भूदान विधेयक पास किए हैं। भूदान यज्ञ देश में महत्त्वपूर्ण भूमि-सुधार करने के लिए स्वास्थ्यकर और अनुकूल वातावरण पैदा करने में बहुत सफल हुआ है; इसने संसार को दिखा दिया है कि भूमि-समस्या का शांतिपूर्ण तरीकों से पूर्ण हल किया जा सकता है। हमारी राय है कि इस शांतिपूर्ण ढंग को तीव्र और पूर्ण करने के लिये उचित कानूनों का स्वागत करना चाहिए और उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए। दरअसल हमें दुःख है कि भारत में भूमिसुधारों की रफ्तार पिछले कुछ सालों में बहुत धीमी रही है। यह ठीक है कि जमींदारों और जमीन के दूसरे मध्यस्थों का उन्मूलन एक क्रांतिपूर्ण कदम है। लेकिन केवल इस सामंती शोषण की समाप्ति से समस्या का हल नहीं होगा। पंच-वर्षीय योजना के अनुसार १९५३ के अन्त तक भूमि-गणना पूर्ण हो जानी चाहिए थी। दुर्भाग्य की बात है कि योजना आयोग निश्चित समय में इस आवश्यक कार्य को न कर सका। यह सच है कि आवश्यक आंकड़ों और जानकारी के अभाव में उचित भूमि संबंधी अधि-नियम बनाना मुश्किल होगा। इसलिए हमारा सुझाव है कि योजना कमीशन को इस साल १५ अगस्त तक भूमि-गणना पूरी करने के लिये पूरी कोशिश करनी चाहिए ताकि १९५४ के बाकी हिस्से और १९५५ में भिन्न राज्य सरकारें पंच-वर्षीय योजना के अनुसार आवश्यक कानून बनाना शुरू कर सकें।

कुछ आर्थिक "विद्वानों" ने कहा है कि भूमि के पुर्नवितरण से देश का खाद्य-उत्पादन गिर जाएगा । पर यह ठीक विचार नहीं है । वास्तव में चीन और जापान में औसत आराजियां केवल लगभग २ एकड़ की हैं और फिर भी वहां प्रति एकड़ पैदावार भारत से तीन गुनी है । संसार भर के तजुर्बों ने इस बात को काफी सिद्ध कर दिया है कि खेत का रकबा बढ़ जाने और मशीनों के इस्तेमाल से प्रति व्यक्ति का उत्पादन बढ़ जाता है; लेकिन यह जरूरी नहीं कि एक एकड़ की पैदावार भी बढ़ जाए । वास्तव में भारत जैसे घनी आबादी वाले देशों में छोटे पैमाने पर और गहरी खेती हमारी आर्थिक समस्यांओं का एकमात्र ठीक हल है । हां, यह जरूरी है कि छोटे किसानों को अच्छे बीजों, खादों, सिंचाई और सहकारी हाट-व्यवस्था की आवश्यक सुविधाएं दी जाएं । भारत की कृषि में मशीनों का इस्तेमाल बड़ी सावधानी और ठीक परीक्षण के बाद होना चाहिए । हमारे जैसे किसी भी देश में ट्रैक्टरों और दूसरी मशीनों का अत्यधिक प्रयोग आर्थिक दृष्टि से हानिकर और मानवता के विरुद्ध होगा । यहां की आधारभूत राष्ट्रीय समस्या यहां के लाखों लोगों को लाभपूर्ण रोजगार देने की है ।

भूमि-सुधारों को शीघ्र करने के खिलाफ एक तर्क यह है कि शहरी इलाकों में भी आमदनी को सीमित करने के लिए साथ ही कानून बनाना चाहिए । आराजियों की सीमा निश्चित करने के बाद ही शहरी आमदनी की भी सीमा निर्धारित कर देनी चाहिए । हम इस विचार की पूरी प्रशंसा करते हैं । यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आर्थिक क्रांति को भूमि तक सीमित नहीं रखा जा सकता; हमारी राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के हर क्षेत्र में इसका असर होना चाहिए । अमीरों और गरीबों के बीच मौजूदा खाई को पाट देना चाहिए या भर देना चाहिए । हमने भूमि में सामन्तवाद खत्म कर दिया है; अब हमें उद्योग में सामन्तवाद खत्म करने की ओर बढ़ना चाहिए । भारत में मैनेजिंग एजेंसी की प्रथा को हम सामन्तवाद का शेषांश समझते हैं । जहां तक हमें पता है, इस रूप और शक्ल में मैनेजिंग एजेंसी की प्रथा संसार के किसी भी दूसरे सभ्य और औद्योगिक देश में नहीं है । इस देश में विदेशी शासकों ने इसे बनाया । इसलिए इसे शीघ्र ही बिल्कुल बदल देना जरूरी है । भारत सरकार को वर्त्तमान भारतीय कम्पनी कानून में ऐसे सुधार करने चाहिए कि उद्योग के संचालकों और हिस्सेदारों के बीच के मध्यस्थों की समाप्ति हो जाए । असल में हमें एक और कदम आगे जाना चाहिए और धीरे धीरे मजदूरों को ही उद्योगों का मालिक बना देना चाहिए । भारत में वास्तविक आर्थिक क्रांति के लिये औद्योगिक संगठन में यह महत्त्वपूर्ण सुधार निहायत जरूरी है । हम सब को यह पूरी तरह महसूस करना चाहिए कि हमारा जनतंत्र राजनीतिक आदर्श के रूप

में उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक आर्थिक आदर्श के रूप में इसकी प्राप्ति न की जाए। सामाजिक और आर्थिक आजादी के बिना राजनीतिक आजादी एक खाली स्वप्न बन कर रह जाएगी। भूमि प्रकृति की देन है; इसे न मनुष्य बढ़ा सकता है न घटा सकता है। इसलिए अधिक न्यायपूर्ण आधार पर इसका पुनर्वितरण निहायत जरूरी है और स्वाभावतः ही भूमि सुधारों को प्राथमिकता देनी चाहिए। लेकिन इस प्रकार के भूमि संबंधी कानून के फौरन ही बाद ऐसे औद्योगिक सुधार भी होने चाहिएं जिन से शहरी क्षेत्रों में आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय का सिलसिला शुरू हो जाए। हमें पूर्ण आशा है कि भारत सरकार इन आर्थिक समस्याओं को आवश्यक समझ कर हाथ में लेगी ताकि गांधीजी के स्वप्नों का सच्चा स्वराज्य लाया जा सके।

७ मई, १९५४

रोजगार और रोजगार !

यह उचित ही है कि इस समय बेरोजगारी की समस्या को हमारे राष्ट्रीय आयोजन की सब ही योजनाओं में प्रमुख और उचित स्थान दिया जा रहा है। हमारे संविधान का यह एक मुख्य निदेशक तत्त्व है कि "समान रूप से नर और नारी सभी नागरिकों को जीविका का पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।" अत: सरकार के ऊपर संविधान की ओर से यह दायित्व लादा गया है कि वह भारत के प्रत्येक हृष्ट-पुष्ट नागरिक को लाभप्रद रोजगार-धंधे में लगाये। हमें यह देखकर प्रसन्नता है कि भारत सरकार ने और योजना आयोग ने इस समस्या की गंभीरता को स्वीकार कर लिया है और उन्होंने जनता के सम्मुख कुछ ऐसी योजनाएं पेश की हैं, जिनका तात्पर्य देश में रोजगार और धंधे पैदा करना है। हमारा तो विचार यह है कि बेरोजगारी के संबंध में नकारात्मक शब्दों में बात करने की बजाय यह ज्यादा अच्छा होगा कि हम देश के बेरोजगार या अर्द्धरूप से रोजगार में लगे हुए व्यक्तियों को काम दिलाने से संबंधित निश्चित पहलुओं पर विचार करें। हमें इस बात से भी बड़ा खेद है कि हमारे देश के कुछ राजनीतिक दल ऐसी सामान्य समस्या का उपयोग अपने राजनीतिक और दलगत उद्देश्यों के लिये करते हैं। उदाहरणार्थ, हाल में स्वतन्त्रता जयन्ती दिवस का किसी दल द्वारा बेरोजगारी विरोधी दिवस के रूप में मनाया जाना बहुत ही अशोभनीय है। हम लोग भी सरकार की अब तक सफलताओं के आलोचक रहे हैं और हम चाहते हैं कि आर्थिक क्षेत्र में प्रगति की रफ्तार को काफी तेज किया जाए। पर हमारा यह भी निश्चित मत है कि अब तक देश ने जो सफलता प्राप्त की है, उसको नजरन्दाज करना देशभक्ति नहीं है, और स्वतन्त्रता जयन्ती को एक काले दिवस के रूप में मनाना और भी निन्दनीय है। राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों में हमारी सफलताएं संसार के किसी भी देश की सफलताओं से मुकाबला कर सकती हैं, पर हमें अबतक की सफलताओं पर ही प्रसन्न बैठे हुए नहीं रहना चाहिए। कांग्रेस और कांग्रेसी सरकारें आर्थिक समस्याओं के प्रति पूर्णरूप से जागरूक हैं और इस बात पर दृढ़प्रतिज्ञ हैं कि उनको वे अपनी पूरी योग्यता के साथ हल करेंगी।

योजना आयोग ने राज्य सरकारों के पास देश में बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिये एक ग्यारहसूत्री कार्यक्रम भेजा है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत कहा गया है कि छोटे २ उद्योग और व्यापारों को पर्याप्त सहायता दी जाए, यांत्रिक

शिक्षा को बढ़ाया जाए, सड़कें और यातायात को विकसित किया जाए, शहरों की गंदी बस्तियों को साफ किया जाए और शहरी क्षेत्रों में कम आय वाले व्यक्तियों के लिये मकानात बनवाए जाएं और शिक्षित वर्गों के दृष्टिकोण में तब्दीली लाने के लिये श्रम और शिक्षा के केंद्र खोले जाएं। यह कार्यक्रम एक अल्पकालीन दृष्टि से ही सामने रखा गया है और इसी दृष्टि से ही उसको हमें देखना चाहिये। देश में पूर्णरूप से रोजगार-धंधे दिलाने के लिये जब हम दीर्घकालीन दृष्टि से विचार करते हैं तो निश्चय ही यह स्वीकार करना पड़ता है कि सरकार को अपनी वर्त्तमान शैक्षणिक, औद्योगिक एवं वाणिज्य नीतियों में उग्र परिवर्त्तन करना होगा। भारत जैसे अविकसित देश के इस गहरे मर्ज को दूर करने के लिये पत्तियों को काटना और कुछ शाखाओं को तराशना पर्याप्त न होगा। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में मनुष्यों की जो श्रम-शक्ति इस समय सुस्त पड़ी हुई है, उसका उचित रूप से उपयोग करने के लिये हमें सारे देश में औद्योगिक विकेंद्रीकरण की एक उग्र नीति को अपनाना होगा और उसे कार्यान्वित करना होगा। हम स्पष्ट कर दें कि हम बड़े पैमाने के उद्योगों के विरोधी नहीं हैं। हमारे वे उद्योग जिन्हें हम मौलिक अथवा कुंजी उद्योग कहते है, उनको तो बड़े पैमाने का होना ही होगा। पर उपभोक्ताओं के सामानों को बनाने के लिये जो उद्योग हैं—अर्थात् सूती कपड़ों के उद्योग, तेल निकालने के उद्योग, कपड़ा बनाने के उद्योग, आटा पीसने के उद्योग, चावल कूटने के उद्योग, गुड़ बनाने के उद्योग, इत्यादि—इनको तो हमें छोटे पैमाने पर ही और कुटीर आधार पर ही संगठित करना होगा ताकि देश के प्रत्येक नागरिक को लाभप्रद रूप से उत्पादक कार्यों में और रोजगार-धंधों में लगाया जा सके। अतः उपभोक्ता सामग्रियों को तैयार करने वाले बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास को तो भविष्य में रोकना ही होगा। राज्य का यह भी कर्त्तव्य है कि वह देखे कि अजहद यंत्रीकरण और नवीकरण की वजह से और भी लोग काम-धंधों से हटाये जाकर बेरोजगार न हो जाएं। सरकार का यह कर्त्तव्य है कि वह यह निश्चित है कर दे कि कितनी वस्तुओं का उत्पादन बड़े पैमाने के उद्योगों द्वारा होगा और कितनी का छोटे पैमाने के और ग्रामीण उद्योगों द्वारा होगा। आज जब हम राष्ट्रीय आयोजन की बातें कर रहे हैं तब बड़े पैमाने के और छोटे पैमाने के उद्योगों के बीच गला-काट प्रतियोगिता चलने देना बहुत ही अदूरदर्शी एवं आत्मघातक होगा। इस प्रकार की स्वतन्त्र प्रतियोगिता चलने देने का सिद्धांत तो बहुत ही पुराना हो चुका और उसको मरे भी बहुत दिन बीत गए, और अब तो भारत सरकार को हिम्मत और दृढ़ निश्चय के साथ भारत में छोटे पैमाने के व्यापार एवं उद्योग को तेजी से बढ़ाने के लिये पूरी सुविधाएं प्रदान करनी होंगी।

यदि आज हम यह सोचें कि बड़े पैमाने के व्यापार को विकसित कर हम देश की बेरोजगारी की समस्या को हल कर सकेंगे तो वह तो बालू से तेल निकालने के ही तुल्य होगा । इस समय देश के सभी बड़े पैमाने के उद्योगों को मिलाकर कुल ३ लाख आदमी काम पाये हुए हैं और उन उद्योगों में लगभग १२ सौ करोड़ रुपये की रकम लगी हुई है। भारत में जो अतिरिक्त मानव-श्रम उपलब्ध है उसको लाभप्रद रूप से काम में लगाने के लिये बड़े पैमाने के उद्योगों को खोलने के वास्ते कहां से पूंजी आवेगी ? और मान लीजिये कि हमें इतनी बड़ी रकम मिल भी जाए तो फिर मिलों के बने हुए सामानों को खपाने के लिये बाजार कहां मिलेंगे ? विदेशों में साम्राज्यवादी तरीकों से बाजारों को फतह करने का सवाल ही हमारे लिये नहीं उठता और जहां तक हमारे देश का प्रश्न है, वहां की जनता की खरीद-शक्ति तभी बढ़ायी जा सकती है, जब विकेंद्रित औद्योगीकरण द्वारा हम देश के कोटि २ नागरिकों के लिये और अधिक रोजगार-धंधे प्रदान कर सकें । सरकार ने निश्चय ही इस नीति को पंचवर्षीय योजना में स्वीकार किया है। पर अभी तक हमें इस नीति को निश्चित रूप से पूरा करने के स्पष्ट चिह्न नहीं दिखलाई पड़ते ।

देश में नए उद्योगों को विकसित करने के लिये और उसके द्वारा जनता को और अधिक रोजगार-धंधे दिलाने की दृष्टि से हमें अपनी आयात और निर्यात व्यापार की नीति में संशोधन करना होगा। यह निश्चय ही कोई सुन्दर दृश्य नहीं है कि हम नई दिल्ली के बाजारों की दूकानों में विदेशी सामानों की भरमार देखते हैं, और यह उस समय जब हम अपने देश के आर्थिक ढांचे को पुनर्गठित करने के लिये गंभीरतापूर्वक सोच रहे हैं और देश के औद्योगीकरण के लिये महत्त्वाकांक्षी योजनाएं बना रहे हैं। यह जरूरी है कि जनता में स्वदेशी की भावना उत्पन्न हो और वह गृह-उद्योगों के बने सामानों का व्यवहार करे। यह भी आवश्यक है कि हमारे भारतीय उत्पादक अपने सामानों को और भी सुन्दर बनायें और गरीब उपभोक्ताओं में स्वदेशी वस्तुओं के लिये जो स्वाभाविक भावना है, उसका दुरुपयोग न करें । पर इसी के साथ यह भी जरूरी है कि भारत सरकार एक मर्तबा फिर वस्तुओं की उस लम्बी सूची की छानबीन करे, जिन को विदेशों से आयात करने की आज्ञा दी गई है। यह तर्क दिया गया है कि कुछ उपभोग सामग्रियों को इसलिये मंगाया जाता है ताकि देश के सामानों का गुणस्तर न गिरे। पर यह तर्क समझ में आने वाला तो है नहीं । यदि भारतीय उत्पादकों को अपने सामानों को बेचने के लिये और लम्बा-चौड़ा बाजार मिलेगा तो स्वभावतः और भी उत्पादक बाजार में दाखिल होंगे और पारस्परिक प्रतियोगिता के सुप्रसिद्ध आर्थिक नियमों

के अनुसार उनकी उत्पादित वस्तुओं के गुण-स्तर ऊंचे उठेंगे ही। हम कदापि नहीं समझ पाते कि क्यों आज भी विदेशों से घटिया किस्म के कपड़े, बोतलबन्द और टीनबन्द फल और सब्जियां, चाय, बिस्कुट, केक और पैस्ट्रियां, नकली रेशम के कपड़े, करघे के और जिल्द बांधने के सामान, दूसरे किस्म के कपड़े, मोजे, फ्राक इत्यादि और नहाने-धोने वाले पोमेड, पौडर, साबुन इत्यादि मंगाये जाते हैं। हमने कई विदेशी फर्मों को इस बात की इजाजत दे दी है कि वह हमारे देश के अन्दर उपभोक्ता सामग्रियों का उत्पादन करें जिसके फलस्वरूप अपने ही देश में, अपनी ही भारतीय पूंजी से चलाये जाने वाले उद्योगों से ऐसी ही सामग्रियों का उत्पादन करने वाले उद्योगों का नुकसान होता है। अतः यह जरूरी है कि इस संबंध में भारत सरकार इस बात की समीक्षा करे कि साबुन, चाकलेट, फाउन्टन-पैन की स्याहियां, टुथब्रुशों, दांत मंजनों तथा कोको-कोला जैसे शीतल पेय पदार्थों को तैयार करने वाले विदेशी मिल्कियत में चलने वाले उद्योग किस तरह से काम कर रहे हैं ? केंद्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों द्वारा सरकारी सामानों को खरीदने की जो नीति चलायी जाती है, उसमें भी उग्र परिवर्त्तन करने की जरूरत है ताकि भारत में बने सामानों और विशेष रूप से ग्रामोद्योगों द्वारा द्वारा तैयार किए गए सामानों को खरीदा जाए, भले ही प्रारंभ में वे ज्यादा खर्चीले पड़ें।

सबसे ऊपर, हमें अपनी शैक्षणिक नीति में बड़ा गहरा परिवर्त्तन करना है। केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा हाल में देश के ग्रामीण क्षेत्रों में एक-अध्यापक वाले स्कूलों को खोलकर शिक्षित बेरोजगार नौजवानों को काम दिलाने की जो योजना बनाई गई है, उसका हम स्वागत करते हैं। पर क्या यह काफी है ? बराबर बढ़ती हुई संख्या में निकलने वाले मैट्रिकुलेटों, इंटरमीडिएटों और ग्रेजुएटों का क्या होगा जो आज भी साल ब साल हमारे वर्त्तमान ढांचे के स्कूलों और कालेजों से निकलते रहते हैं। वर्षकाल १९४९-५० में मैट्रिकुलेशन, इंटरमीडिएट, बी.ए. और बी. एस.-सी. की परीक्षाओं में पास व्यक्तियों की संख्या २,७८,४०० थी। १९५१-५२ में यह संख्या बढ़कर ३,७४,९०० हो गई। अकेले उत्तरप्रदेश में ही १९५२ में मैट्रिकुलेशन और इंटरमीडिएट की परीक्षाओं में बैठने वालों की संख्या १ लाख ७५ हजार थी। १९५३ में यह संख्या बढ़कर २,५९,००० हो गई। शिक्षित लड़के और लड़कियों की यह जो चढ़ती हुई बाढ़ हमारे देश में उठ रही है, उनके मुताल्लिक हमारा शिक्षा-मंत्रालय क्या कर रहा है ? मौजूदा तरीके की शिक्षा देने वाले स्कूल और कालजों का जमाना रहा है, पर अब उनका जमाना नहीं रहना चाहिये। हमारे विचार से तो उनका बिकास यदि हम अब भी जारी रखेंगे तो वह समाज के प्रति गहरा जुर्म ही होगा। हमारी नई शिक्षा संस्थाएं इस प्रकार की होनी चाहिए,

जो हमारे लड़के और लड़कियों को किसी कार्य विशेष के लिये तैयार करें। वास्तव में हमारे शैक्षणिक और औद्योगिक कार्यक्रमों में घनिष्ट संबंध और एकसूत्रता होनी चाहिये। सरकार अथवा योजना आयोग को समय-समय पर यह बतलाते रहना चाहिए कि किस प्रकार के शैक्षणिक क्रमों की आवश्यकता पंचवर्षीय योजना की पूर्त्ति के लिये आवश्यक होगी। तभी शैक्षणिक संस्थाओं और लड़कों के माता-पिता द्वारा विभिन्न यांत्रिक प्रकार के शैक्षणिक क्रमों की भर्ती में स्वाभाविक रूप से क्रमबद्धता ला दी जाएगी। निश्चय ही वर्त्तमान संविधान के अन्तर्गत शिक्षा के संबंध में जिम्मेदारी प्रादेशिक सरकारों की है, पर तो भी केंद्रीय शिक्षा-मंत्रालय देश के वर्त्तमान शिक्षा ढांचे में बहुत काफी क्रांतिकारी परिवर्त्तन ला सकता है। निश्चय ही बहुत तेज चलने में खतरे रहते हैं। पर यह भी स्मरण रहे कि अपने इस प्राचीन देश में जिस नये प्रकार के जनतंत्र का हम संगठन करना चाहते हैं उसके लिये बहुत तेज न चलना भी काफी गहरा खतरा हो सकता है।

गांधीजी ने हमें कहा था कि एक निर्धन और गरीब व्यक्ति के सम्मुख भगवान् तो केवल रोटी के रूप में अथवा एक मुट्ठीभर चावल के रूप में ही प्रगट हो सकता है। उसी प्रकार हमारे देश के कोटि-कोटि बेरोजगार देशवासियों के लिये राष्ट्रीय योजना का तब ही कोई मतलब हो सकता है जब वह उनको काम-धंधे दे और रोटी दे। वह आज "प्रकाश, और प्रकाश" की मांग नहीं कर रहे। वह आज चाहते हैं कि हम उनको रोजगार दें, और रोजगार दें।

५ सितम्बर, १९५३

: १८ :

बाढ़ नियंत्रण का अर्थशास्त्र

इस वर्ष उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल और आसाम के लाखों लोग अभूतपूर्व भयंकर बाढ़ के शिकार बने हैं। अन्दाज है कि करीब दो करोड़ आदमी बीसवीं सदी की इन सबसे बदतर बाढ़ों के शिकंजे में इस समय आए हुए हैं जिन्होंने गंगा-ब्रह्मपुत्र की सरसब्ज घाटी के एक हजार मील लम्बे घेरे को दलदली बना दिया है। सिर्फ बिहार में ही ८० लाख लोगों को बहुत भारी नुकसान पहुंचा है। अन्दाज लगाया जाता है कि कुल मिलाकर करीब ५० करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है। भाग्यवश मानव जीवन की क्षति तुलनात्मक रूप से कम हुई, यद्यपि पशु-धन हजारों की संख्या में नष्ट हुआ है। बाढ़ का बहाव इतना अकस्मात् और सबल था कि कुछ हाथी भी हिमालय से उत्तरी बिहार में बहकर चले आये। धान और मकई की खड़ी फसलों को बहुत सख्त नुकसान पहुंचा है। काश्तकारों ने दूर-दूर से धान के पौधे लाकर दोबारा लगाए पर एक दूसरे सैलाब ने उनको बहा डाला। इन लोगों की हालत देखकर सचमुच रोना आता है।

मुझे हाल में उत्तरी बिहार के बाढ़ग्रस्त इलाकों को देखने का मौका मिला। बाहरी दुनिया से जुदा इन गांवों का हवाई जहाज से दौरा करने की बजाय पैदल कीचड़ में से होते हुए और नाव, मोटरट्राली व रेल से जाकर मैंने इन्हें देखना तय किया। मानना होगा कि बिहार सरकार ने फुर्ती से और कारगर तौर पर सर्वत्र सहायता पहुंचाई है। सभी गांवों को तुरन्त अनाज भिजवाया गया है और व्यापक रोगों को रोकने के लिए डाक्टरी टुकड़ियां अपने काम में जुटी हुई हैं। कर्ज और मुफ्त मदद के रूप में सरकारी मदद व्यवस्थित रूप से दी जा रही है थी। सिंचाई और बिजली के केंद्रीय मंत्री ने भी कई इंजीनियरों और अन्य प्राविधिक विशेषज्ञों के साथ बिहार, बंगाल और आसाम के बाढ़ग्रस्त इलाकों का दौरा किया है। लेकिन माली नुकसान और इंसानी तबाही इतने बड़े पैमाने पर हुई है कि सिर्फ सरकारी मदद काफी नहीं हो सकती। इसलिए, जरूरत है कि जल्दी से जल्दी और कारगर तरीके से काफी मात्रा में गैरसरकारी मदद का इंतजाम किया जाय। अनाज के अलावा इन इलाकों के लोगों को इस वक्त कपड़े की सख्त जरूरत है। मैंने ऐसी हजारों औरतें देखीं जो अपनी हया तक छिपाना मुश्किल पा रही थीं। लाखों बच्चे बिल्कुल नंगे इधर-उधर दौड़ रहे थे क्योंकि उनके मां बाप अपना सब कुछ इन बाढ़ों में खो चुके थे। सड़कों और रेल की पटरियों

के टूट जाने से यातायात के साधन बहुत दुष्कर हो गए हैं।

इन सब विपत्तियों के बावजूद भी मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जनता की आत्मा ऊंची और उनका उत्साह अमिट था । रेल के स्टेशनों और जलग्रस्त गांवों में मुझसे मिलने वाले हजारों लोग इस बात से सहमत थे कि सरकार अपने सीमित वित्तीय साधनों से जितना कुछ कर रही है उससे ज्यादा नहीं किया जा सकता । लेकिन वे लोग दान, मुफ्त मदद और कर्जों पर नहीं रहना चाहते। वे चाहते हैं कि सरकार बाढ़ों पर स्थायी नियंत्रण करने के लिए तात्कालिक कार्यवाही करे । उन लोगों का यह भी सुझाव था कि उन्हें अपने भरण-पोषण के लिए छोटे व कुटीर उद्योगों के रूप में कुछ काम दिया जाय। उदाहरण के लिए खादी बुनना, रस्सी और टोकरी बनाना, मछली व्यापार व लकड़ी और चमड़े के काम को सहकारिता के आधार पर इस तरह व्यवस्थित किया जा सकता है कि लाखों बेरोजगार लोगों को काम मिल सकता है। उन्होंने यह भी सुझाया कि सालाना बाढ़ों पर काबू पाने के लिए कोसी, कमला, बूढ़ी गंडक और बाघमती नदियों के दोनों किनारों पर मिट्टी के बांध बनाने के लिए सरकार को योजना तैयार करनी चाहिए। उन्होंने मुझे आश्वासन दिलाया कि इन योजनाओं को जल्द पूरा करने में वे स्वेच्छापूर्वक शारीरिक श्रम करने के लिए खुशी से राजी होंगे । वे उन दीर्घकालीन योजनाओं की जानकारी हासिल करने में दिलचस्पी नहीं रखते जिन्हें पूरा होने में अभी पांच-सात वर्ष लगेंगे । यह जानने के लिए उनका इच्छुक होना स्वाभाविक ही है कि अगली बरसात से पहले कितना काम पूरा हो जायगा ताकि कम-से-कम इलाके में बाढ़ों से बरबादी हो। मझे यह भी बताया गया कि जिन इलाकों में निकट भविष्य म बाढ़ों का रोकना संभव नहीं है, वहां राज्य की ओर से सब जगह ट्यूबवेल लगा देने चाहियें ताकि बरसात शुरू होने से पहले ही मकई की फसल की जा सके और अगर बाढ़ आए तो भी फसल को नुकसान न पहुंचे ।

अभी कुछ दिनों पहले सिंचाई व बिजली मंत्रालय ने कुछ प्रमुख इंजीनियरों को चीन की नदी-घाटी योजनाएं देखने भेजा था ताकि वे लोग सुवाई, यांगत्सी व अन्य नदियों की विभिन्न बाढ़-नियंत्रण कार्यवाहियों का अध्ययन कर सकें। इन इंजीनियरों ने अपनी आरम्भिक रिपोर्ट में बताया है कि चीन में बाढ़ नियंत्रण मुख्यतः उन बांधों से होता है जो नदियों के दोनों तटों पर सदियों पहले बनाए गए थे और अब भी, जहां कहीं जरूरी समझा गया, ऐसे ही नए बांध बनाए गए हैं। पुराने जमाने में ये बांध अलग अलग इलाकों में स्थानीय जमींदारों द्वारा

बनवाये गए थे। अब सरकार की मौजूदा कएरूप योजना में जमींनों को सुरक्षित रखने की एक कार्यक्षम बांध-व्यवस्था है। इंजीनियरों ने यह भी बताया है कि "जिस रफ्तार से चीन में कार्रवाई की गई है वह बेजोड़ है।" चीन की एक बहुत बड़ी और बहुत महत्त्वपूर्ण सिंचाई की नहर, जिस की लम्बाई १०० मील है और जिस में २४७ करोड़ घन फुट मिट्टी काम आई, ८० दिन में पूरी की गई थी। "कोई भी मशीन काम में नहीं लाई गई और मिट्टी की खुदाई, उसके लाने ले जाने और रौंदने का सारा काम मानवश्रम द्वारा ही किया गया।" भारतीय इंजीनियरों ने यह भी लिखा है कि "नहरों पर यह काम इस रफ्तार के साथ हुआ है जैसा कि भारत या संसार के अन्य किसी देश में भारी साजसामान की मदद से भी नहीं हो पाया है।" इंजीनियरों की रिपोर्ट में आगे चलकर बताया गया है कि चीन की सरकार लाखों लोगों में जोश फूंक कर उन्हें इस काम में एक साथ जुटाने में सफल रही है।

दूसरे देशों के अनुभव से सीखना हमेशा अच्छा है, और खासतौर पर चीन जैसे पड़ोसी देश से। लेकिन हमें यह जान कर आश्चर्य है कि भारत के प्रमुख इंजीनियर केवल चीन जाकर ही नदी-घाटी योजनाओं में मानव श्रम लगान का मल्य समझ सके। उत्तरी बिहार में ही मैंने पाया कि सौ वर्ष पहले जनता ने सरकार की मदद से गंडक नदी पर करीब सौ मील लम्बा बांध बनाया था। मुख्यतः मानवश्रम द्वारा बनाए हुए ये बांध अभी तक काम में आते रहे हैं और इनके कारण इस बरस भी गंडक आसपास के इलाकों का कोई नुकसान नहीं कर पाई है। हमने "आर्थिक समीक्षा" में कुछ महीने पहले कहा था कि भारत की नदी-घाटी योजना में सीमेंट कांक्रीट का प्रयोग बेशऊर तरीके से हो रहा है और कि मानवश्रम के उपयोग की ओर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि हमारे लाखों लोगों को रोजगार मिल सके। हमें पता नहीं कि हमारे इंजीनियरों ने अभी तक इस बात पर गौर किया है या नहीं। योजनाओं को शीघ्र पूरा कर देने और अति आधुनिक बनाने की चेष्टा में उन्होंने विदेशों से अनावश्यक मशीनें मंगाई हैं। जब चीन के लोग अपनी बड़ी-बड़ी योजनाएं मानवश्रम द्वारा उल्लेखनीय समय में समाप्त कर सकते हैं तो हम अपने देश में ऐसा क्यों नहीं कर सकते? बिहार के बाढ़ग्रस्त इलाकों में अपने दौरे से मुझे विश्वास हो गया है कि भारतीय जनता देश प्रेम, धैर्य, सख्त मेहनत और उत्साह में किसी से पीछे नहीं हैं। समस्या केवल व्यवस्थित योजनाओं और प्राविधिक सलाह के अनुसार उचित रूप से संगठित करने की है। अतः भारतीय इजीनियरों का यह कर्त्तव्य है कि वे अविलम्ब ऐसी योजनाएं बनाएं और जनता से उन्हें बहुत जल्द कार्यान्वित करने का

तकाजा करें ।

मुझे रत्ती भर भी संदेह नहीं है कि हमारी जनता हमारी आशाओं को पूर्ण करेगी । यह निहायत जरूरी है कि जैसे ही बाढ़ का पानी घटे, सरकार को नदियों के दोनों किनारों पर बांध खड़े करने की अपनी योजनाएं तैयार रखनी चाहिएं। योजनाओं की तैयारी और आरम्भिक विचार-विनिमय में अधिक समय न गंवाया जाना चाहिए। यह सारा काम "करो या मरो" की भावना के साथ किया जाना चाहिए। हमें बाढ़, अकाल और भीषण मानव दरिद्रता के खिलाफ युद्ध छेड़ना है । मुझे आशा है कि सरकार और इंजीनियरगण बाढ़ रोकने की कार्यवाहियों को उच्चतम प्राथमिकता देंगे और इस काम को युद्ध-प्रयास के बराबर ही समझेंगे ।

७ सितम्बर, १९५४

चीन और भारत : एक तुलना

आजकल सभी लोग चीन की चर्चा करते हैं। भारत का चीन के साथ युगों-युगों से सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है और एक पड़ोसी मित्र देश के सम्बन्ध में बातें करने में कोई हर्ज नहीं है। पर यदि हम अपनी ही सफलताओं को गौण समझें तथा अपने अन्दर कुछ यह खामख्याल पैदा करें कि चीन ने उन सब खराबियों को हल करने का मंत्र ढूंढ़ लिया है जिनसे हमारा देश आज परेशान है, तो यह निश्चय ही गलत होगा। राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न देशों में चीन ने गत तीन वर्षों में जो कुछ कामयाबियां हासिल की हैं, उनकी हम निश्चय ही पूरे तौर से प्रशंसा करते हैं। उसने अपने देश की बारह वर्ष की पुरानी मुद्रास्फीति को सफलतापूर्वक समाप्त कर दिया है। राष्ट्रव्यापी भूमिसुधारों के फलस्वरूप वहां के किसान सामन्ती शोषण एवं दमन से मुक्त हो गये हैं। प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिये तथा बिजली और सिंचाई की सुविधायें प्रदान करने के लिय बृहद् नदी-घाटी योजनायें चलायी जा रही हैं, नये कारखाने खुले हैं और नई खानें खोदी गई हैं। नये चीन की सरकार ने भ्रष्टाचार और शासनिक अक्षमता को बहुत हद तक सफलतापूर्वक खत्म किया है और वहां कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में भी काफी बढ़ोतरी हुई है। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि चीन ने डिक्टेटरशाही का, अधिनायकवाद का मार्ग अपनाया है। चीनी गणतंत्र के अध्यक्ष माओ से-तुंग ने ऐसे राजनीतिक संगठन के लिये नया शब्द गढ़ा है—"जनता की गणतांत्रिक अधिनायकशाही"। पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यह नया शासनिक ढांचा भी सुप्रसिद्ध "सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशाही" के ही तुल्य होगा। स्मरण रहे कि इस "सर्वहारा वर्ग की डिक्टेटरशाही" ने जहां कुछ मसलों को हल कर दिया है, वहां उसने मस्तिष्क, मनुष्य और मशीनों को जबरियन एक ही ढर्रे में बांध कर अनेकों समस्याओं को खड़ा कर दिया है। भारत ने जहां एक विदेशी शासन से अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता शान्तिपूर्ण और अहिंसात्मक तरीकों से प्राप्त कर जनमत पर आधारित एक गणतन्त्रीय शासन की स्थापना की, वहीं चीन में बहुत लम्ब अर्से तक गृहयुद्ध का दुःखद दौर रहा और उसके बाद खून और हिंसा द्वारा एकदलीय डिक्टेटरशाही स्थापित हुई।

यह सही है कि भारत की स्वतन्त्रता इतनी तड़कीली और भड़कीली नहीं थी, यहां शान्तिपूर्ण और संघर्षरहित तरीकों से राजनीतिक शक्ति का हस्तान्तरण हुआ और उसके फलस्वरूप शासनिक यन्त्र में लगभग कोई भी तब्दीली नहीं हुई। हम

निश्चय ही अनेकों कठिनाइयों और दुःखों से बच गय जो हिंसात्मक क्रांति के फल-स्वरूप अवश्य ही हमारे ऊपर आते। पर भारत को ब्रिटिश शासनिक यन्त्र की बहुत-सी खराबियां और कमजोरियां विरासत में प्राप्त हुईं, जो आज भी हमारी तेज प्रगति के मार्ग में रुकावट सिद्ध हो रही हैं। तो भी स्वतन्त्रता के गत ६ वर्षों में हमने जो सफलतायें प्राप्त की हैं, उनके मूल्य को न समझना गलत होगा। भारत को पाकिस्तान से विस्थापित हुये ७५ लाख शरणार्थियों को पुनः स्थापित करने के बड़े ही कठिन काम को करना पड़ा। धन्य है हमारा योग्य नेतृत्व और हमारी शासकीय योजनायें, जिनकी कोशिशों से हमने विस्थापित व्यक्तियों की समस्या को संसार के अनेक देशों से कहीं अच्छी तरह हल किया है। अब तक हम विस्थापितों की सहायता और पुनः स्थापन पर लगभग १८० करोड़ रुपये खर्च कर चुके हैं। हमारे सरकारी नौकरी दिलाने के दफ्तरों ने लगभग २ लाख विस्थापितों को कामधन्धे दिलाये हैं। लगभग ८० हजार विस्थापित केन्द्रीय एवं प्रादेशिक सरकारों के दफ्तरों में काम पा चुके हैं। देश के विभिन्न भागों में सरकार ने लगभग १६ लाख २५ हजार विस्थापितों को भूमि पर स्थापित किया। भारत छोड़कर पाकिस्तान जाने वाले व्यक्तियों के मकानों और नवनिर्मित मकानों में भी लगभग २५ लाख विस्थापितों को रिहायश का मौका दिया गया है और चालू वित्तीय वर्ष में ३० हजार नये मकान बनाने का निर्णय हुआ है। पुनर्स्थापन के इस कठिन कार्य को पूरा करने के अलावा भारत सरकार ने स्वतन्त्रता के कुछ ही महीनों के अन्दर देश की ६०० से कुछ अधिक सामन्ती रियासतों को संघीय शासन में सम्मिलित किया। धन्य है स्वर्गीय सरदार पटेल की बुद्धि और दूरदर्शिता कि इतना बड़ा एकीकरण बिना एक गोली चलाये पूरा हो गया, जिसका दूसरा उदाहरण संसार के इतिहास में नहीं मिल सकता। राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त होने के ढाई वर्ष के अन्दर-अन्दर भारत अपना नया गणतन्त्रीय संविधान बनाकर उसको चालू कर सका। जनतन्त्र एवं बालिग मताधिकार पर आधारित यह संविधान निश्चय ही संसार के सबसे अच्छे संविधानों में गिना जाता है। संविधान बनाने के दो वर्ष के अन्दर ही भारत सरकार देश के १८ करोड़ बालिग मतदाताओं की मतदान सूचियां तैयार करवा कर ऐसे बड़े पैमाने पर सफलता-पूर्वक आम चुनाव करवा सकी है जिसका जोड़ संसार के इतिहास में नहीं मिलता। गत ६ वर्षों में भारत में राजनीतिक स्थायित्व रहा है और नागरिक शान्ति रही है, जो वस्तुएं आज एशिया, और एशिया ही क्या, विश्व के अन्य भागों में भी बहुत कम दिखाई पड़तीं हैं। फिर भारत ने सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिय अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना भी चालू कर दी है। यद्यपि हमारी योजना बहुत अधिक महत्वाकांक्षी नहीं, पर निश्चय ही गणतन्त्रीय ढांचे के अन्तर्गत यह

पहली योजना है, और पूर्व अथवा पश्चिम के आर्थिक योजनाओं के इतिहास में इसका अनोखा स्थान है। हमारी समाज विकास योजनायें आज देश के ५० हजार गांवों में चालू हैं और हमारी नई राष्ट्रीय विस्तार योजना आगामी ७ या ८ वर्षों में देश के सब ही साढ़े ५ लाख ग्रामों तक व्याप्त हो जाएगी। बृहद् और विशाल बहुधन्धी नदी-घाटी योजनाओं पर लगभग ८०० करोड़ रुपया व्यय किया जा रहा है, जिनसे लगभग १ करोड़ ७० लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और जो १५ लाख किलोवाट बिजली पैदा करेगी। आधुनिक विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान करने के लिये भारत में अनेक राष्ट्रीय प्रयोगशालायें खोल दी गयी हैं। निजी व्यवसाय के क्षेत्र में उद्योगों का जो विकास हो रहा है उसके अलावा सरकार ने स्वयं कुछ बड़े कुंजी उद्योग चालू किये हैं, जैसे सिन्द्री रासायनिक खाद का कारखाना, चितरंजन का इंजन बनाने का कारखाना, हिन्दुस्तान टैलीफोन फैक्टरी, हिन्दुस्तान जहाज निर्माण कारखाना, हिन्दुस्तान वायुयान निर्माण कारखाना, मशीनी यन्त्र कारखाना, राष्ट्रीय यन्त्र कारखाना और तेल शुद्ध करने के बड़े कारखाने हाल में १०० करोड़ रुपये लगाकर एक बृहद् लोहे और इस्पात के कारखाने को खोलने की पूरी योजना पूरी हो चुकी है। देश के प्रायः सब ही प्रदेशों में जमींदारी एवं अन्य सामन्ती अधिकारों को समाप्त करने वाले प्रभावशाली कानूनों को पास किया जा चुका है। विभिन्न राज्य सरकारें इसके बाद और भी उग्र भूमिसुधार, जैसे आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारण इत्यादि को पूरा करने में लग रही हैं। आचार्य विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन ने शान्तिपूर्ण एवं अहिंसात्मक तरीकों से भूमि के पुनर्वितरण की समस्या को हल करने का बिल्कुल अनोखा तरीका निकाला है। संसार में मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के इतिहास में स्वेच्छापूर्वक दान द्वारा २१ लाख एकड़ भूमि का एकत्रित हो जाना बिल्कुल ही अनोखा और अद्वितीय है। यह सब स्वतन्त्र भारत की बड़े मार्के की सफलतायें हैं, जिस पर हम सब सही तौर से फख्र कर सकते हैं। पर इसके यह माने नहीं हैं कि हम आत्मसंतुष्ट होकर बैठ जायें। इतने से ही खुशी होकर हम लोगों को शान्त नहीं होना है और न ही पुरानी कामयाबियों पर हमें अपने को जीवित रखना है। हमको बराबर अपनी कमजोरियों और गलतियों को समझते रहना चाहिये और आर्थिक उन्नति के क्षेत्र में हमें अपनी प्रगति की रफ्तार को तेज करते रहना चाहिये।

चीन की ओर हमें एक स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा की दृष्टि से देखना चाहिये। हमें निश्चय ही वहां की कामयाबियों की प्रशंसा करनी चाहिये, पर उसी के साथ हमें तसवीर का दूसरा पहलू नहीं भूल जाना चाहिये। हम चीन के भूमिसुधारों के बारे में बहुत कुछ सुना करते हैं। पर क्या हम यह जानते हैं कि वहां अब भी भूमि

पर व्यक्तिगत स्वामित्व की प्रथा कायम है और अभी तक चीन की नई सरकार ने 'धनवान् किसानों' की जमीन नहीं ली है जिसे वे या तो स्वयं जोतते हैं या मजदूरों से जुतवाते हैं। फिर धनवान् किसानों द्वारा लगान पर उठाई गई जमीनें भी अभी कुछ-कुछ कायम हैं। चीन के भूमि-सुधार अधिनियम में कहा गया है कि "मध्यम वर्ग के किसानों (जिनमें खाते-पीते मध्यमवर्गीय किसान भी सम्मिलित हैं) की भूमि की, और दूसरी जायदादों की, किसी भी दखलन्दाजी से रक्षा की जाएगी।" इस प्रकार स्पष्ट है कि कुछ मानों में चीन का भूमि सुधार हिंदुस्तान के भूमि-सुधारों से भी कम क्रांतिकारी है। औद्योगिक क्षेत्र में भी चीन "मिश्रित अर्थ नीति" को चला रहा है जिसके अन्तर्गत व्यक्तिगत निजी व्यवसाय के लिए बड़ी गुंजाइश है। वास्तव में चीन में व्यापारी पूंजी का ८० प्रतिशत "निजी पूंजीवादी धंधों" का है। हां, बेशक चीन के इन पूंजीपतियों का बड़ा आकर्षक नामकरण किया गया है, वे "राष्ट्रीय पूंजीपति" कहे जाते हैं। जैसा कि डा० ज्ञानचन्द ने हाल में बताया, चीन में व्यक्तिगत व्यवसाय "केवल चलने ही नहीं दिए जाते वरन् उनको तमाम राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों में निश्चित स्थान प्रदान किया गया है।" बड़े जोशीले कम्यूनिस्ट कार्यकर्ता भी यह अपेक्षा नहीं करते कि चीन में पूरे २० साल के पहले समाजवादी व्यवस्था आ सकेगी। चीन के मजदूर अधिनियमों का भी यदि अध्ययन किया जाए तो पता लगेगा कि वे भारत के मजदूर कानूनों से अधिक प्रगतिशील नहीं हैं। जहां तक न्याय-व्यवस्था में सुधार का सम्बन्ध है, चीन ने पुराने न्यायक्रम को समाप्त कर दिया ह और जनता की अदालतों का एक नया सिलसिला शुरू किया गया, जिसम पेशेवर वकीलों की ज्यादा गुंजाइश नहीं है। पर यह स्पष्ट है कि चीन की अदालतें आज कुछ निश्चित बने-बनाए नियमों और कानूनों का पालन नहीं कर रही हैं। वहां तो न्याय-व्यवस्था में व्यक्तिगत प्रभाव और रुझान ही ज्यादा काम करता दिखाई पड़ रहा है। भारत सरकार ने घोषणा की है कि वह शीघ्र ही देश के न्याय-व्यवस्था सम्बन्धी कानूनों में गहरी तब्दीलियां करेगी। इस सम्बन्ध में भारत और चीन एक दूसरे से बहुत कुछ सीख सकते हैं

निश्चय ही चीन के स्कूलों कालेजों और विश्वविद्यालयों में बड़ी तब्दीलियां हुई हैं। पर श्री अमरनाथ झा और प्रो० मुजीब जैसे सुप्रसिद्ध भारतीय शिक्षाशास्त्रियों पर वहां के नए शैक्षणिक और सांस्कृतिक स्तरों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है। चीनी विश्वविद्यालयों में बड़े बड़े सुस्तकालय हैं, परन्तु वह लेनिन, मार्क्स और माओ की पुस्तकों के अलावा मुश्किल से कुछ और पढ़ाते हैं। उन शिक्षा संस्थाओं में बौद्धिक स्वातन्त्र्य तथाकथित ही है। संतुलित एवं उदार विचार धारा के विकास के लिए लड़कों और लड़कियों को कुछ विशेष बातें सिखाना ब रटाना, और इस प्रकार

"उनके दिमाग को धोना" बहुत लाभदायक नहीं सिद्ध हो सकता। फिर यह भी निश्चित है कि चीन में प्रेस की स्वतन्त्रता और विचारों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता पर काफी रोक है, भले ही इसके विपक्ष में कुछ भी कहा जाय। संभवतः पार्टी के अन्तर्गत आत्मसमालोचना की कुछ स्वतन्त्रता है, पर सामान्य रूप से विचारों को व्यक्त करने की स्वतन्त्रता वहां नहीं है। कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों के उत्पादन में और बढ़ोतरी के सम्बन्ध में बड़े बड़ लम्बे दावे किये जाते हैं। हमसे कहा जाता है कि हमारा उत्पादन दुगुना हो गया या तिगुना हो गया, पर अभी तक वास्तविक स्थिति बताने के लिए वहां पर विश्वस्त और वैज्ञानिक आंकड़े नहीं मिलते। यह जान कर आश्चर्य होता है कि चीन में अब प्रथम राष्ट्रव्यापी मर्दुमशुमारी की तैयारी की जा रही है। कम्यूनिस्ट देशों ने संसार भर में अपने प्रचार करने की एक विशेष प्रणाली चलाई हुई है, जिस के द्वारा जनता को चित्र का चमकदार पहलू ही नजर आता है। हमें मानना पड़ेगा कि अभी भारत को ऐसे प्रचार की कला और विज्ञान को सीखना है। पर निश्चय ही हमें एक-तरफे प्रचार में नहीं पड़ना चाहिए। हां, हमें अपनी सफलताओं को जनता के सम्मुख उचित रूप में पेश करना चाहिए ताकि उनका उत्साह जागृत हो और उनके दिमागों की कुछ गलतफहमियां दूर हों। भारत में हम विदेशी विशेषज्ञों को बुलाये जाने के खिलाफ हैं। पर क्या हमें यह मालूम है कि बम्बई के "ब्लिटज" अखबार के सम्पादक करंजिया द्वारा दिए गए आंकड़ों के अनुसार चीन में इस समय लगभग ६० हजार रूसी विशेषज्ञ हैं? भारत अंतर्राष्ट्रीय मामलों में निष्पक्षता की एक निश्चित नीति को चलाने में सफल हुआ है। पर क्या चीन सोवियत रूस से हटकर अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित कर पाया है?

अतः हम लोगों को अपने संतुलन को नहीं खो देना चाहिए। निश्चय ही चीन ने गत तीन वर्षों में बहुत कामयाबियां हासिल की हैं। भारत भी अनेकों सफलताओं को प्राप्त करने का श्रेय ले सकता है। दोनों देशों को अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। हम लोगों को चाहिए कि हम जनता की सामाजिक और आर्थिक दशा को सुधारने की समस्या की ओर सेवा और विनम्रता की भावना के साथ देखें। एक देश की तो तारीफ कर उसे आसमान तक पहुंचा देना, और दूसरे की बुराई करना, यह सर्वथा अर्थहीन है। चीन ने अधिनायकवाद के मार्ग को ग्रहण किया है, भले ही उन्होंने उसको "जनता की अधिनायकशाही" का सुन्दर नाम दे दिया हो। जहां तक भारत का प्रश्न है, उसने अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये जनतांत्रिक और शान्तिपूर्ण क्रांति के तरीकों को अपना लिया है। यह सोचना गलत है कि अधिनायकवादी तरीके ज्यादा तेज हैं, और जनतान्त्रिक तरीके आवश्यक रूप से सुस्त होते हैं। यदि हमारी इच्छा-शक्ति प्रबल है, और

हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट है, तो जनतंत्रवाद यदि डिक्टेटरशाही से अधिक तेज नहीं तो कम-से-कम उसके इतना तेज तो हो ही सकता है। किसी भी शासन की जनतान्त्रिक प्रणाली अधिक निश्चित, अधिक स्थायी और अधिक स्थिर होती है। अतः हम लोगों को चीन से, तथा दुनिया के अन्य देशों से भी, अच्छी बातें सीख लेनी चाहिए। पर इसी के साथ हमें अपने दिमागों में यह भी साफ होना चाहिए कि अपने उद्धार के लिए प्रत्येक देश को अपनी परम्पराओं, अपनी संस्कृति और अपनी विशेष बुद्धि के अनुसार ही अग्रसर होना होता है। अपनी सफलताओं का आलोचक होना तो अच्छा है पर यदि हम अपने ही काम को तो बुरा गिनें और दूसरे देश की बहुत तारीफ करें, तो कम-से-कम इतना तो हम कह ही सकते हैं कि यह देशभक्ति नहीं होगी। हमारा दृढ़ मन्तव्य है कि भारत एक भाग्यविधायक देश है और उसे संसार को विशेष संदेश देना है। वह संदेश गांधी, नेहरू और विनोबा का है। हमारा पुनीत कर्त्तव्य है कि हम इस संदेश को सदैव अपने विचारों में रख और विनम्रता, विश्वास और दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ उस को पूरा करने का भरसक प्रयत्न करें।

२० दिसम्बर, १९५३

एक नई कर-नीति की ओर

भारत ने गुलामी की जंजीरों को तोड़ आजादी हासिल की, परन्तु यह आजादी तभी पूरी आजादी समझी जा सकती है जब आम लोग आर्थिक रूप से भी स्वतन्त्र हों। भारतीय संविधान में राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों में कहा गया है कि राज्य अपनी नीति का विशेषतया ऐसा संचालन करे कि सुनिश्चित रूप से "नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।" तथा इस बात का ध्यान रखे कि "आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी केन्द्रण न हो।" राज्य से यह भी आशा की जाती है कि "राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के, तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अंगहीन तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का कार्यसाधक उपबन्ध करेगा।" संविधान में यह भी लिखा है "उपयुक्त विधान या आर्थिक संघटन द्वारा, अथवा और किसी दूसरे प्रकार के राज्य कृषि के, उद्योग या अन्य प्रकार के सब श्रमिकों को काम, निर्वाह-मजूरी, शिष्ट-जीवन-स्तर, तथा अवकाश का सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशायें तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा तथा विशेष रूप से ग्रामों में कुटीर-उद्योगों को वैयक्तिक अथवा सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।"

यह बिलकुल साफ है कि इन उद्देशों की प्राप्ति तभी हो सकती है जब मौजूदा आर्थिक पद्धति की एक आयोजित आधार पर पुनर्रचना की जाय। प्रथम पंचवर्षीय योजना मूलतः संविधान के निर्देशक तत्त्वों पर आधारित है तथा इस बात को मान कर चलती है कि "योजना का उद्देश्य एक तर्कपूर्ण एवं समान कर-पद्धति द्वारा आर्थिक असमानताओं में कमी करना होना चाहिए।"

आर्थिक आयोजन दो प्रकार से किया जा सकता है। या तो यह कि इसका आधार अधिनायकवादी तरीके हों जिनसे "समाज को हिंसात्मक तरीकों से बदल दिया जाय", या दूसरा ढंग हो सकता है शांतिपूर्ण और प्रजातांत्रिक तरीकों के आधार पर समाज को योजना के सूत्र में बांधना, जिसका परिणाम हो समाज के सभी वर्गों में सहयोग एवं सद्भावना। भारत ने अपनी इच्छा से सर्वकल्याणकारी राज्य की प्राप्ति के सपनों के उद्देश्य को पूरा करने के लिए प्रजातान्त्रिक तरीकों

को ही बेहतर समझ अपनाया है। ऐसा सोचना गलत है कि प्रजातान्त्रिक ढंग के अनुसार की गई प्रगति अधिनायकवादी तरीकों से जरूर धीमी होगी।

हमने एक बीच की अर्थ-व्यवस्था (मैं 'मिश्रित अर्थ-व्यवस्था' शब्द पसन्द नहीं करता) पर चलने का इरादा किया है जिसमें पूंजीवाद तथा साम्यवाद दोनों ही की चरम सीमाओं से हमें छुटकारा मिल सकेगा। यही एक प्रकार से वह आर्थिक व्यवस्था भी है जिसे राष्ट्रपिता ने स्वतन्त्र भारत के लिए अपनी पलकों में संजोया था। इस प्रकार की एक नई सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की रचना करने के लिए निहायत जरूरी है कि भूमि, कृषि, उद्योग, प्रशासन तथा राजस्व के क्षेत्रों में सुधारों की रफ्तार तेज करने के लिए उचित कानून बनाये जायें। कर जांच आयोग को सौंपे गये काम का भी अपना महत्त्व है। आधुनिक संसार में आर्थिक आयोजन के साधन के रूप में राजस्व का बड़ा महत्त्व है तथा इस स्थिति में तात्कालिक आवश्यकता को दृष्टिगोचर करते हुए इसका उपयोग किया ही जाना चाहिए।

यह कहना ठीक नहीं कि भारत में करों का दबाव अभी भी बहुत भारी है और अब अधिक करों के लगाने की गुंजाइश नहीं। भारत में राष्ट्रीय आय पर लगने वाले करों का अनुपात केवल लगभग ७ प्रतिशत है जबकि श्री लंका में २१ प्रतिशत, मिश्र में १६ प्रतिशत, संयुक्तराष्ट्र अमरीका में २६ प्रतिशत तथा ब्रिटेन में ४१ प्रतिशत है। यही नहीं, जब कि भारत की केवल ६.२४ प्रतिशत आबादी ही आय कर देती है, ब्रिटेन के ४४ प्रतिशत, संयुक्त राष्ट्र अमरीका के ३१ प्रतिशत, आस्ट्रेलिया के ३४ प्रतिशत तथा कनाडा के २० प्रतिशत लोग आय-कर देते हैं। निस्संदेह हमारे देश में करों के लिए काफी गुंजाइश है, खास तौर से इस बात को ध्यान में रखते हुए कि देश के सम्मुख बहुत सी योजनाएं हैं जो आगे चल कर लोगों की कर देने की क्षमता बढ़ायेंगी। जैसा कि स्वर्गीय आर. सी. दत्त ने अपनी पुस्तक "भारत के आर्थिक इतिहास" में लिखा है, "सरकार द्वारा प्राप्त किये गये कर सूरज द्वारा जमीन से खींची हुई उस नमी के समान है जो बदले में पुनः धरती पर उस वर्षा के रूप में लौट आयेगी जो जमीन को उपजाऊ बनायेगी।" दरअसल हर बात इस पर मुनहसिर करती है कि किस चीज पर बढ़ाये हुए कर खर्च किये जाने हैं। यदि भारत के लोगों को इस बात का विश्वास हो कि बढ़ाये हुए करों को सरकार उनके तथा आने वाली पीढ़ियों के लाभ के लिए खर्च कर रही है, तो जनता और अधिक करों के लगाने के विरुद्ध न होगी। लेकिन यह जरूरी है कि जन-लाभ के सिद्धान्त के साथ-साथ कर लगाते समय योग्यता-सिद्धान्त को भी ध्यान में रखा जाय। भारत जैसे अर्द्ध-विकसित देश में जनता के सभी वर्गों से आवश्यक वित्त

इकट्ठा करने के लिए, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों ही प्रकार के करों की आवश्यकता होगी। गरीब, मध्यवर्गीय, तथा उच्चवर्गीय सभी लोगों को अपनी क्षमता के अनुसार करों के बोझ को उठाना होगा।

आज दो प्रकार के लोग हैं, "जिन के पास सब कुछ है" तथा "जिन के पास कुछ नहीं", अर्थात् धनिकों एवं निर्धनों के बीच एक भारी खाई पड़ी है। इस खाई को जल्दी और एक नियमबद्ध कर-पद्धति से भरना होगा। गरीब बड़ी खुशी से नए करों को सहन कर सकेंगे, यदि उन्हें विश्वास हो कि राज्य अमीरों को नीचे लाकर आर्थिक समानता लाने की ओर प्रयत्नशील हैं। मौजूदा सामाजिक और आर्थिक अवस्था को देखकर यह मानना होगा कि यद्यपि हमने राजनैतिक आजादी हासिल कर ली है परन्तु समाज में जो भयंकर असमानताएं हैं उनमें कमी नहीं हुई। किस तरह गरीब जनता से उम्मीद की जा सकती है कि उसे सच्ची आजादी की झलक तक देखने को मिली ह ? और जब तक उन्हें यह 'झलक' नहीं दीखती उस समय तक नए और सम्पन्न भारत के निर्माण के इस बड़े काम में उनका हार्दिक सहयोग पाना कल्पना की बात है। मेरा सुझाव है कि हमारी आर्थिक नीति का उद्देश्य एक औसत कुटुम्ब के लिए कम से कम १०० रुपये माहवार की आय जुटाना होना चाहिए तथा ऊंची आमदनी की उच्चतम सीमा २० गुनी अर्थात् २००० रुपये प्रतिमाह होनी चाहिए। यह भी ध्यान में रहे कि यह १:२० का अनुपात उचित समय के बाद १:१० तक भी लाया जा सकता है।

मेरी राय में उपर्युक्त लक्ष्य को हासिल करने में इन बातों पर विचार करना आवश्यक होगा :—

(१) धनवान् लोगों को यह बात समझा देना चाहिए कि भारत में प्रजातन्त्र राज्य तभी सफल हो सकेगा जब कि धनवान् लोग, अपनी सम्पत्ति प्रसन्नतापूर्वक सरकार को कर के रूप में दे दें। यह सम्पत्ति देश की गरीब जनता की भलाई में उपयोग की जायेगी। यह बात सत्य है कि इस समय देश में ऐसे लोगों की संख्या जिनकी वार्षिक आय १,१५,००० रु० से अधिक है केवल १२८६ हैं। परन्तु यह भी सत्य है कि लगभग २० करोड़ की रकम हर साल कर वसूली से बची रह जाती है। सरकार तथा समाज के धनवान् लोगों को चाहिए कि वह राष्ट्रीय खजाने में हर साल अधिक से अधिक रकम पहुंचायें। करों से बचना राजद्रोह के समान पाप समझना चाहिये और यदि आवश्यक हो तो उसी जुर्म के अनुसार अपराधी को दंड भी देना चाहिए।

(२) ५०,००० रु० की सालाना आय के बाद आयकर तथा सुपर टैक्स की दरें तेजी से बढ़नी चाहिएं। श्रम से पैदा की हुई तथा बिना श्रम किये उपार्जित आमदनी पर अलग अलग दर से कर लगाना चाहिए। काम करने वाले लोगों को कुनबे की आकृति के अनुसार भत्ता मिलना चाहिए। यह प्रबन्ध इंग्लैंड के आधार पर ही होना चाहिये। यह सोचना गलत है कि ऐसे भत्तों से कुनबों की आकृति में वृद्धि होगी और देश की जनसंख्या बढ़ जायेगी।

(३) मृत्यु के पश्चात् लगने वाले कर की दर बहुत कम है। उसकी दर एक करोड़ से ऊपर की जायदादों के लिए ७५ फीसदी होनी चाहिए। परन्तु इस कार्य से कर देने वालों को कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए और उन्हें अपने जीवनकाल ही में ऐसे कर को भुगतान करने का अवसर देना चाहिये। संपदा-कर से आया हुआ रुपया केवल गांवों के विस्तार के लिये ही खर्च किया जाये।

(४) बिक्रीकर की दर विलासपूर्ण वस्तुओं पर ऊंची होनी चाहिये और ग्रामोद्योग तथा कुटीर उद्योगों में बनने वाली वस्तुओं पर यह कर न लगाया जाए। भारत सरकार को राज्यों में लगने वाले बिक्री-कर की दरों को देश भर में एकसा बना देना चाहिए। राज्यों के बीच व्यापार से जो समस्याएं उत्पन्न होती हैं उनका शीघ्र से शीघ्र निर्णय कर देना चाहिए और एक स्थान पर वसूल होने वाला बिक्री-कर कई स्थानों पर वसूल होने वाले कर की अपेक्षा अधिक उपयोग में लाया जाये। मुकदमों का फैसला शीघ्र किया जाये और करसंबंधी मामलों में लोगों को परेशान नहीं किया जाना चाहिये। कानून पर अमल करने के नियम जितने सादे हो सकें उपना ही अच्छा।

(५) जमीन पर लगने वाले लगान के स्थान पर कृषि आय-कर लगाना चाहिए। वह सब जमीन जिनकी सालाना आमदनी किसी खास स्तर से कम है इस कर से मुक्त हों तथा जिन की आय उससे ज्यादा हो उनके लिए कर की दर ऊंची हों। इसके फलस्वरूप जमीन का फिर से बंटवारे का कार्य शीघ्र हो सकेगा और भूमि पर अधिकारों का आधार अधिक न्यायपूर्ण होगा।

(६) भारत में जमींदारी जागीरदारी प्रथा तो करीब-करीब खतम हो चुकी है। अब समय वह आ गया है जब इसी किस्म की जो प्रथा बड़े-बड़े उद्योगों में व्याप्त है, उसे भी खत्म किया जाए। आज कल की मैनेजिंग एजेन्सी की प्रथा जागीरदारी और जमींदारी की ही निशानी है और इसको पूर्ण रूप से बदल देना

चाहिए । संसद में रक्खा जाने वाला भारतीय कम्पनी संशोधन विधेयक इस दिशा में अधिक दूर तक नहीं जाता । शीघ्र से शीघ्र इस कार्य की पूर्ति के लिए एक नया कानून बनना चाहिए । बीच के समय में कम्पनियों के मुनाफे और मैनेजिंग एजेन्टों के कमीशन की दर क्रमशः ज्यादा से ज्यादा ६ प्रतिशत और ७॥ प्रतिशत पर रोक देना चाहिये ।

(७) करों से बच निकलने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए तथा कम्पनियों के ऊपर अधिक रोक रखने के लिये यह आवश्यक है कि सरकार एक ऐसा विधान बनाये जिसके अन्तर्गत कम्पनियों के हिसाब की जांच सरकारी या चार्टर्ड आय-व्यय परीक्षकों द्वारा हो सके । कम्पनियों द्वारा स्वयं हिसाब की जांच कराने से हिसाब इस प्रकार बना दिया जाता है कि कर इकट्ठा करने वाले गड़बड़ी को पकड़ ही नहीं सकते ।

(८) हमारे देश में बहुत-सा धन बेकार पड़ा हुआ है । ऐसे बेकार साधनों पर कर लगने से धन की गति में वृद्धि होगी और लोगों को अधिक काम-धन्धे मिल सकेंगे, कारण इस प्रकार या तो लोग खर्च करने पर बाध्य होंगे अथवा यत्नपूर्वक धन को उत्पादक कार्यों में लगाएंगे ।

(९) आर्थिक नीति का अन्तिम लक्ष्य सब बड़े-बड़े कुंजी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण तथा सब उपभोक्ता उद्योगों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए । यह लक्ष्य तभी उपलब्ध हो सकता है जब मिल की बनी हुई सभी उपभोग की वस्तुएं, जैसे कपड़ा, तेल, चीनी, चमड़ा, कागज और दियासलाई आदि पर कर लगाया जाये और उससे प्राप्त धन से कुटीर और ग्राम उद्योगों को सहायता दी जाये । सरकार ने इस नीति को कपड़े के मामलों में कार्यान्वित कर दिया है और यह रुपया खादी और हाथ-करघे से बने कपड़ उद्योगों के विकास के लिये दिया जाता है । इसी नीति का पालन अन्य विकेन्द्रित उद्योगों में भी करना चाहिये ।

(१०) धर्मार्थ कार्यों म धन का दान देकर धनिकों द्वारा धन से स्वयं मुक्ति पाने के कार्य को बढ़ावा देने के लिए यह आवश्यक है कि आयकर की प्रतिबंदियां कम कर दी जायें । इसके लिए धर्मार्थ के खास-खास कार्यों में व्यय होने वाली आयकर से मुक्त रकम की मात्रा ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत कर दी जाये । जिन खास कार्यों में दान रूप में धन देने पर उपर्युक्त छूट दी जायेगी, वह वही होने चाहिए जो राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम के निहित अंग हैं ।

(११) पंच-वर्षीय योजना के अन्तर्गत स्थानीय कार्यों में लोगों का जो सहयोग मिला है उससे साफ जाहिर होता है कि किसी भी कर लगाने की नीति का निर्धारण करते समय सीधे तथा स्पष्ट लाभ का सिद्धान्त हमेशा दिमाग में रहना चाहिए। साधारणतया, राष्ट्रीय योजना के लिए लोगों पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष करों के लगाने के मुकाबिले कहीं बेहतर होगा कि विभिन्न स्थानीय योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए, जिनसे उन क्षेत्रों के लोगों की बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, जनता से ऐच्छित श्रम, अथवा जिन्सों या नकद चन्दे के रूप में सहयोग प्राप्त किया जाय। विशेष योजनाओं अथवा राष्ट्रीय बचत सर्टीफिकेट्स, राजकोष बचत निधि सर्टीफिकेट्स तथा राष्ट्रीय योजना ऋण पत्रों, इत्यादि के खरीदने के लिए समय-समय पर चन्दा इकट्ठे करने का आयोजन करना होगा।

(१२) देश में किसी काम में न आ रहे धन-साधनों का उपयोग करने के विचार से ग्रामीण क्षेत्रों के लिए बैंकिंग तथा बीमा संबंधी विशेष योजनाएं तैयार की जानी चाहिए। व्यापारिक बैंकों को ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी शाखाएं प्रारम्भ करने के लिये बढ़ावा देने के विचार से उन्हें इस बात की इजाजत दी जा सकती है कि वे ग्रामीण शाखाओं में काम करने वालों को थोड़ी तनख्वाहें दे सकें। डाक बीमा योजना, जो इस समय केवल सरकारी नौकरियों तक ही सीमित है, सब जनता के लिए भी लागू की जा सकती है।

(१३) आयात-कर में वृद्धि के साथ ही साथ छोटे-छोटे तथा घरेलू उद्योग-धंधे बचाने के विचार से, सूखे फल, बिस्कुट, मिठाइयां, मोटरकार, सिगरेट, शराब, कपड़े इत्यादि विलास की वस्तुओं के आयात पर और ऊंचा आयात-कर लगाना चाहिये। बड़े पैमाने पर विलास की चीजों के आयात ने लोगों की स्वदेशी की भावना का गला घोंट दिया है और भारत के उद्योगों की प्रगति की रफ्तार तेज करने के लिए जरूरी है कि स्वदेशी की भावना का लोगों में पुनः उदय हो।

(१४) अब तक करों का बहाव गांवों से शहरों की ओर रहा है, जब कि जरूरत इस बात की है कि अब इसका उल्टा हो। शुरू में किसी विशेष क्षेत्र में उसूल किए गए प्रत्यक्ष करों की राशि का ५० प्रतिशत उसी क्षेत्र की स्थानीय विकास योजनाओं पर खर्च किया जाय। आगे, केवल उन्हीं क्षेत्रों में आबपाशी के ऊंचे दरों वाले कर लगाये जायें जिन्हें बढ़ी हुई सिंचाई की सुविधाओं से लाभ उठाने का अवसर मिला है। संक्षेप में, कहने का मतलब है कि बढ़ाये गये करों से होने वाले लाभ लोगों को आसानी से दीख सकें।

(१५) सरकार को भविष्य में उपभोग की वस्तुएं उत्पादन करने वाले उद्योगों में विदेशी पूंजी के लगाने की इजाजत नहीं देनी चाहिए। यह ज़रूरी है कि विदेशी पूंजी लगे भी तो उत्पादक यंत्रों के बनाने के उद्योगों में लगे और उसे उपभोग-वस्तुओं के बनाने वाले उद्योगों से निकाला जाए। इसके लिये ऐसी चीजों पर अधिक बिक्री-कर तथा अन्य कर लगाने होंगे जिनमें (भारत में निर्मित) होने का ढकोसला लगा है, जब कि वास्तव में वे हमारी ही भूमि पर विदेशी पूंजी द्वारा उत्पादित हैं।

(१६) स्थानीय निकायों के सिलसिले की कर-पद्धति को अधिक वैज्ञानिक एवं नियमबद्ध बनाने की आवश्यकता है। स्थानीय संस्थाओं के द्वारा करों के सही निर्धारण के लिए राज्य सरकारों के पास पृथक् अधिकारी होने चाहिए, जिनकी विशेष सेवाओं के खर्च का कुछ भाग राज्य सरकारों एवं कुछ भाग स्थानीय संस्थाओं को सहना होगा। विभिन्न विकास योजनाओं के परिणामस्वरूप भूमि से होने वाली अतिरिक्त आय पर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। अपनी दौलत की शान-शौकत दिखाने के लिए आलीशान इमारतें बनाने की मनोवृत्ति को खत्म करने के लिए नगरपालिकाओं तथा कारपोरेशनों को ऊंची दरों पर मकान-कर लगाना चाहिए।

(१७) अतिरिक्त मुनाफा कर, जो युद्ध के समय में लगाया गया था, आवश्यक संशोधन करने के बाद फिर लगा दिया जाये। इससे विशेष उद्योगों के मुनाफे से इकट्ठी की हुई रकम सरकारी कोष में आ जायेगी। इसके अलावा सट्टे के कार्यों पर भी भारी कर लगाये जायें।

(१८) इस बात का ध्यान रहे कि सरकार जिन लोगों से कर लेती है उनमें यह विश्वास हो जाये कि यह धन उनके हित के लिये ठीक तौर पर व्यय किया जा रहा है और कहीं भी अनावश्यक खर्च नहीं होता। इस कार्य के लिये व्यय में कमी तथा कार्य में क्षमता होना अति आवश्यक है। बड़ी-बड़ी तनख्वाहों में स्वेच्छा से या अनिवार्य रूप से कमी की जानी चाहिये और सरकारी नौकरियों में भ्रष्टाचार खत्म होना चाहिये। जनतांत्रिक शासन में जनता कितने ही कष्ट और मुसीबतें झेल सकती हैं पर सरकारी नौकरियों में बेईमानी और ढीलापन नहीं सह सकती।

(१९) आज हमारी आधी आय सुरक्षा-फौज में व्यय होती है। इस खर्चे में शीघ्र ही कोई खास कमी करना संभव नहीं है। परन्तु इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि हम अपनी राष्ट्रीय योजना के अन्तर्गत सेनाओं को देश के उत्पादक

तथा अन्य विस्तार कार्यों में लगा सकें। इससे करों के बढ़ाने की आवश्यकता भी कम होगी। शांति के समय में सेनाओं को गांव की सड़कें, पुल, स्कूल, अस्पताल, पेड़ लगाने, जंगली जानवरों को मारने तथा मट्टी के कटाव को रोकने इत्यादि के कार्यों में लगाया जा सकता है।

(२०) राज्य राजस्व आय हेतु ऐसे साधनों को भी खटखटा सकता है जहां से आज कर नहीं लिया जाता। इसके लिये यह आवश्यक है कि कुंजी-उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाए, राज्य की ओर से जन-सेवा-उद्योग (बिजलीघर, पानी कल इत्यादि) खोले जाएं और आयात-निर्यात के लिये सरकारी व्यापार विभाग निर्मित हो। अनुभव प्राप्त करने की दृष्टि से पहले कुछ ही चीजों में राज्य को व्यापार करना चाहिये।

(२१) और सब से आवश्यक बात है ईमानदारी और घोर श्रम का तथा सादगी का वातावरण पैदा किया जाए। यह तभी हो सकेगा जब वे लोग जो आज शासन के शिखर पर हैं जनता के सामने स्वयं नमूना पेश करें। साधारण जनता अपनी कमर तब तक नहीं कस सकती जब तक कि बड़े-बड़े सरकारी अफसर स्वयं यह कार्य नहीं करते। शहरों में बड़ी-बड़ी दावतों आदि द्वारा धन का गंवारू प्रदर्शन बन्द होना चाहिये। नशीली वस्तुओं के बन्द करने का कार्य पूर्ण रूप से कार्यान्वित किया जाये। यह हमारे रचनात्मक कार्य का आवश्यक अंग होना चाहिये। नशेबन्दी से जो आमदनी में कमी होगी वह यूं पूरी की जायगी कि लोग नशे पर व्यय होने वाला धन उत्पादक कार्यों में लगायेंगे और उससे उनको लाभ होगा।

२२ मई, १९५४

"भूदान यज्ञ" का अर्थशास्त्र

भारत के संविधान में "राज्य की नीति" के एक "निदेशक तत्व" के रूप में तय किया गया है कि "काम पाने के अधिकार को प्राप्त कराने के कार्य साधक उपबन्ध" के लिए और "उपयुक्त विधान या आर्थिक संघठन द्वारा अथवा और किसी दूसरे प्रकार से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सब श्रमिकों को काम, निर्वाह, मजूरी, शिष्ट जीवन-स्तर प्राप्त कराने" के लिए कार्यवाही की जानी चाहिए। १९५१ की जनगणना के सबसे हाल के आंकड़ों के मुताबिक हमारे देश की आबादी अव ३५६०.८ लाख है जिनमें करीब ४४०.८ लाख ऐसे काश्तकार हैं जिनकी अपनी जमीनें नहीं हैं और ५०.३ लाख "खुद काश्त न करने वाले जमीनों के मालिक" और "लगान वसूल" करने वाले लोग हैं। भारत में खेती के लिए लगभग ३० करोड़ एकड़ जमीन उपलब्ध है जिसमें परती और काश्त की जाने योग्य बेकार पड़ी जमीन भी शामिल है। जैसा कि हम सबको मालूम है भारत की औसत आराजियों का क्षेत्रफल अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। उत्तरप्रदेश में ६ एकड़, मद्रास में ४.५ एकड़, बंगाल में ४.४ एकड़, पंजाब में १० एकड़, बिहार और उड़ीसा में ४.५ एकड़ और मध्यप्रदेश में ८.५ एकड़ आराजियों का औसत क्षेत्रफल है। एक निर्धारित अधिकतम सीमा, जैसेकि २५ एकड़ की आराजियों की संख्या के बारे में पूरे आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। लेकिन यह जानने के लिए काफी सामग्री मौजूद है कि देश की बहुत काफी ज़मीन २५ एकड़ से ऊपर की आराज़ियों में है। यह जमीन भूमिहीन श्रमिकों में बांटे जाने के काम में लाई जा सकती है ताकि बेरोजगारी की समस्या सुलझे और ग्रामीण जनता की जमीन की स्वाभाविक भूख संतुष्ट हो सके। यही आचार्य विनोबा भावे द्वारा आरम्भ किये हुए भूमि-दान यज्ञ का प्रथम आधारभूत सिद्धान्त है। भूमि की भूख मनुष्य की एक उचित और स्वस्थ इच्छा है, खासतौर पर ग्रामवासियों के लिए। हवा और पानी की तरह समृद्ध प्रकृति से भूमि पाने का भी उन्हें पूरा अधिकार है।

अतः किसी भी व्यक्ति को खाद्य-उत्पादन के लिए अपने आप और अपने परिवार द्वारा काश्त की जा सकनेवाली जमीन से ज्यादा जमीन रखने का अधिकार नहीं है। इस नैतिक सिद्धान्त और साथ ही संविधान की "हिदायतों" के आभार को पूरा करने के लिए काश्तकार को बड़े से बड़े पैमाने पर यथासम्भव शीघ्र भूमि दिलाना आवश्यक है। भारत में औसत किस्म की आराजी ५ से १०

एकड़ है, अतः २५ एकड़ तक की उच्चतम सीमा निर्धारित कर देना उचित ही होगा।

इस भूमि का पुनर्वितरण किस प्रकार होगा ? कम्युनिस्ट देशों में जमींदारों को मुआवजा दिए बिना ही खत्म किया गया है। लेकिन भारतीय संविधान के मूल अधिकारों के अनुसार भूमि प्राप्त करने के लिए मुआवजा देना सरकार का आभार है। संविधान में मुआवजे की दर नहीं तय की गयी है। लेकिन जाहिर है कि कम दर के हिसाब से भी करोड़ों रुपये खर्च होंगे, जोकि हमारा जैसा गरीब देश मुश्किल से ही कर सकता है। तो फिर इलाज क्या है ? विनोबा, दुनिया को यह दिखाकर कम्युनिज्म की चुनौती का मुकाबला करने की भरसक कोशिश कर रहे हैं कि अहिंसा और आग्रह द्वारा जमींदारों को समझाया जा सकता है कि वे अपनी अतिरिक्त जमीन बेजमीन लोगों को मुआवजे बिना ही दे दें। अभी तक वह अपने भूमिदान यज्ञ से लगभग ३.५ लाख एकड़ भूमि इकट्ठी कर चुके हैं। जैसाकि राबर्ट ट्रमबल ने न्यूयार्क टाइम्स पत्रिका में लिखा है, आचार्य विनोबा गांव-गांव उपदेश देते फिरते हैं कि "जिनके पास अधिक है उन्हें जिनके पास कुछ नहीं है उन्हें देना चाहिए।" विनोबा के इस नए तरीके ने लाखों लोगों, गरीबों, अमीरों दोनों को आकर्षित और प्रेरित किया है, और लोग उन्हें "भूमिदान करने वाला भगवान" कहते हैं। यह सच है कि आचार्य विनोबा से अकेले भूमि के पुनर्वितरण की सारी समस्या हल कर डालने की आशा नहीं की जा सकती। लेकिन उनका भूमिदान आंदोलन निश्चय ही शीघ्र और संतोषजनक सुधारों का रास्ता बना रहा है जिन्हें बाद में जरूर ही सरकारी कानूनों की शक्ल मिल जाएगी। दरअसल, विनोबा का भूमि आंदोलन भारत में कम्युनिस्ट कार्यवाईयों का एकमात्र कारगर जवाब है।

आचार्य विनोबा भावे की भूमि वितरण नीति पर कुछ शंकाएं प्रगट की गयी हैं। योजना कमीशन ने पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में सुझाया है कि गांव का सारा इलाका सहकारिता के आधार पर काश्त की जमीन का एक इकाई माना जाय। उन्होंने काफी बड़े और मशीनों से संचालित "पंजीकृत खेतों" की स्थापना की भी सलाह दी है। लेकिन इसके विपरीत आचार्य विनोबा की दृढ़ भावना है कि आरम्भ में भूमिहीन श्रमिकों को जमीन की किस्म और सिंचाई की सुविधाएं आदि देखते हुए, पांच से दस एकड़ तक जमीन मिलनी चाहिए।

जमीन इकट्ठा करने के बजाय हल चलाने, घासफूस साफ करने और फसल काटने जैसे कृषि-कार्यों में सहकारी प्रयास आरम्भ करवाने की कोशिश की जानी

चाहिए। फसल बेचने और बीज, खाद व मशीनें खरीदने के लिए भी सहकारी समितियां बनाई जा सकती हैं। दूसरे शब्दों में, हमें "सहकारी सम्मिलित खेती" की अपेक्षा "सहकारी उन्नत खेती" को प्रोत्साहन देना चाहिए। बहुत से लोगों की भूमि की भूख संतुष्ट करने के अलावा पारिवारिक आधार पर छोटे पैमाने की खेती भी बहुत अधिक लाभप्रद होगी। यह सोचना गलत है कि छोटे पैमाने की पारिवारिक खेती की अपेक्षा बड़े पैमाने की खेती पर कम खर्च आता है और ज्यादा अच्छा काम होता है। यह बात कोरी भावुकता या पुरानी धारणा नहीं है, बल्कि मानव स्वभाव और मनोविज्ञान के स्थूल तथ्यों पर आधारित है। व्यावहारिक अनुभवों से इसकी पुष्टि हुई है और अनेक अर्थशास्त्रियों ने इसका समर्थन किया है।

प्रोफेसर सी० एन० वकील ने "न्यूनता की अर्थ-व्यवस्था के लिये आयोजन" नामक अपनी पुस्तक में कहा है कि "भूमि पुनर्वितरण की गति बढ़ाना आज देश की एक सबसे बड़ी तात्कालिक आवश्यकता है। गैर-कृषि गतिविधि में सम्पत्ति पर बड़े पैमाने के स्वामित्व से चाहे जो भी लाभ हों, जब तक कृषि एक जीवन-प्रणाली बनी रहती है, ग्रामीण जनता का मत, जो कि अन्य देशों के सुधारों के प्रति अधिकाधिक जागरूक होता जा रहा है, कभी भी ऐसा भूमि-सुधार बर्दाश्त न करेगा जिसमें भूमि के पुनर्वितरण और बड़ी आराज़ियों के टुकड़े कर देने की बात पर न सोचा गया हो।"

सर माल्कम डार्लिंग ने मैनचैस्टर गार्डियन में यूगोस्लाविया की सहकारी खेती पर लिखते हुए कहा था, "इस प्रयोग ने न केवल किसान को किसान के खिलाफ बल्कि बहुत से किसानों को राज्य के खिलाफ भी बना दिया है। यहां तक कि सम्मिलित क्षेत्र और निजी क्षेत्र की पैदावार की तादाद में भी फर्क है।" उन्होंने "कार्य-क्षमता का अभाव और बरबादी, नौकरशाही तरीके और अन्दरूनी झगड़े, काम से जी चुराना और आवारागर्दी" पाई।

"किसान के विरुद्ध मार्क्स" नामक एक हाल के प्रकाशन में प्रोफेसर मित्रेनी ने बताया है कि बड़े पैमाने की खेती के मार्क्सवादी सिद्धान्त के बावजूद भी किस प्रकार पूर्वी योरोप के छोटे पैमाने के खेत अभी तक अपना सफल अस्तित्व बनाए हुए हैं। डा० मित्रेनी ने यह भी कहा है कि जहां-जहां भी बड़े पैमाने की खेती व्यापारिक रूप से सफल हुई है, वहां वह राष्ट्र के लिये महंगी पड़ी है क्योंकि वह धरती की सारी अच्छाई चूस लेती है। खेती के व्यावहारिक अनुभव से यह साफ नजर आ चुका है कि अक्सर बड़ी मशीनों द्वारा की गई खेती से प्रति व्यक्ति की उत्पादन-

शीलता बढ़ती है न कि प्रति एकड़ की उत्पादनशीलता ।

"छोटा किसान" नामक अपनी पुस्तक म श्री मैंसिघंम ने स्पष्ट शब्दों म कहा है :

"मानव सीमाबद्धताओं और अन्य प्राकृतिक कारणों की दृष्टि से प्रति एकड़ की सम्पन्नता आराजी के आकार के प्रतिकूल अनुपात में घटती-बढ़ती है ।" इसका मुख्य कारण "भूमि पर स्वतंत्र जीवन निर्वाह करने की स्थायी और सतत इच्छा है ।"

दुनिया का दौरा करते वक्त मुझे जापानी देहातों में जाने का मौका मिला, जहां कि मैंने औसतन २.५ एकड़ के सुव्यवस्थित, सुन्दर खेत देखे । चीन में भी, मौजूदा कम्युनिस्ट सरकार ने बड़े-बड़े खेतों के छोटे टुकड़े कर उन्हें असली काश्तकारों में बांटना शुरू किया है । राज्य ने हजारों कुएं खुदवाए हैं ताकि काश्तकारों को सिंचाई की बेहतर सुविधा प्राप्त हो सके । मशीनों बिना हाथ से ही घनी खेती करके चीन और जापान भारत की प्रति एकड़ पैदावार से दुगुना या तिगुना पैदा कर लेते हैं ।

संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ में बड़े पैमाने पर खेती होती है क्योंकि भूमि के अनुपात में उनकी जनसंख्या योरोप, चीन, जापान और भारत से बहुत भिन्न है । बड़े पैमाने पर मशीनों की मदद से खेती करने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं है क्योंकि उनके पास काम करने वाले कम हैं और जमीन बहुत ज्यादा है । अमेरिका तक में, जहां कि कुल आबादी का केवल १८ प्रतिशत भाग ही खेती में लगा हुआ है, आज छोटे पैमाने की खेती की ओर झुकाव है क्योंकि अब ज्यादा लोग जमीन पर काम कर देहातों के 'उद्यान-नगरों' में रहना चाहते हैं ।

सोवियत रूस में, जो कि सामुहिक खेती का देश है, सामूहीकरण का किसानों ने बहुत सख्त विरोध किया था । डोरिन वारिनर ने 'पूर्वी योरोप में क्रांति' नामक अपनी पुस्तक में बताया है कि किस प्रकार 'सोवियत प्रयोग बहुत महंगा पड़ा ।'

"सामूहीकरण से दो साल तक अकाल पड़ता रहा और इतनी ज्यादा तादाद में मवेशी मारे गए कि जिनकी कमी पूरी करने में दस साल लगे ।"

रूस में सामूहिक खेतों के बावजूद भी बड़े खेतों में काम करने वाले हरेक

आदमी को १/२ एकड़ से २.५ एकड़ तक जमीन अपनी निजी जरूरतें पूरा करने के लिये दी जाती है। जैसाकि "रूमानिया में भूमि और किसान" के लेखक ने कहा है असलियत यह है कि 'थोड़ी जमीन पर ज्यादा जोर देकर काम करने से पैदावार, कई कारणवश, उसी अनुपात में घटती है कि जिस अनुपात में खेती की जमीन बढ़ाई जाती है।"

उत्तर प्रदेश के राजस्व मंत्री चरनसिंह ने कहा है कि बड़े पैमाने की खेती के हिमायती यह सोचना पसंद करते हैं कि 'चार एकड़ जमीन में चार एकड़ जितनी पैदावार न होगी, जबकि चार एकड़ के एक खेत में अगर चार एकड़ और मिला दिये जायं तो आठ एकड़ के एक खेत से ज्यादा पैदावार होगी। यह धारणा उद्योग के क्षेत्र में सही हो सकती है पर कृषि के क्षेत्र में नहीं है।"

जैसाकि मैं पहले कह चुका हूं इसका अर्थ यह नहीं कि छोटे पैमाने की खेती में सहकारिता के लिये गुंजाइश नहीं। बल्कि, इसके विपरीत छोटे पैमाने के किसानों के बीच विभिन्न कृषि कार्यों में परस्पर सहायता और सहयोग का बहुत बड़ा महत्व है। अपनी भूमि का सामूहीकरण करना छोड़ कर, हल चलाने, घासफूस साफ करन, फसल काटने, पैदावार बेचने और उपभोग व उत्पादन के लिये जरूरी चीजें खरीदने आदि बाकी सब कामों में एक-दूसरे की वे मदद कर सकते हैं। सहकारी लेनदेन और ऋण, मवेशियों की बरबादी या सूखा पड़ने या बहुत अधिक बारिश से होनेवाले नुकसान से बचने के लिए सहकारी बीमा, सहकारी सिंचाई, सहकारी पशुपालन और गांव की बिरादरी द्वारा फसलों के सहकारी आयोजन आदि के लिये बहुत काफी गुंजाइश होनी चाहिये। बहुत छोटी और अ-लाभकारी आराजियों का मिला कर भी सहकारी खेती की जा सकती है।

अतः भूमिहीन श्रमिकों की बेरोजगारी दूर करने और भूमि की उनकी वाजिब भूख संतुष्ट करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि व्यापक रूप से भमि का पुनर्वितरण आरम्भ किया जाय। बिनोबा का भूमिदान आन्दोलन मुआवज़े बगैर, पर सद्भावना और सहानुभूति के साथ, अमीरों से गरीबों को जमीन दिलाने के लिए एक उचित वातावरण पैदा कर रहा है। भूमि के शांतिपूर्ण वितरण का ऐसा वातावरण ही देश को उस खूनी क्रांति से बचा सकता है जिसे लाने के लिये कम्युनिस्ट आमादा हैं।

अतः मैं न केवल भारत की बल्कि समूची दुनिया की एक सबसे कठिन समस्या

हल करने में आचार्य विनोबा के "यज्ञ" को सर्वोच्च महत्व देता हूं। आचार्य विनोबा भारत के विशाल भागों में रक्तहीन क्रांति के बीज बोने में बहुत सफल रहे हैं। हो सकता है इस समय हम भूमिदान आंदोलन की महान् संभाव्य शक्तियों को न समझ सकें। किन्तु, मुझे किंचितमात्र संदेह नहीं कि विनोबा का भूमि आंदोलन सत् और असत्, हिंसा और अहिंसा, शांतिपूर्ण निर्माण और घृणा व विनाश के भीषण संघर्ष के इतिहास में एक प्रमुख सीमा-चिह्न के रूप में याद किया जायगा।

*१५ अप्रैल, १९५३

सर्वोदय और मार्क्सवाद

मदुरा की एक सभा में व्याख्यान देते हुए हाल में प्रोफेसर जे० सी० कुमारप्पा ने कहा : "गांधीजी के आदर्श कुछ हद तक रूस में बर्ते जा रहे हैं" और यहां तक कि "यद्यपि रूस का आदर्श सर्वोदय (उसके सम्पूर्ण अर्थों में) नहीं है तथापि इस समय रूस में जो सामाजिक व्यवस्था है वह कई दृष्टियों से गांधीवाद के आदर्शों के बहुत निकट ही है।" हमें यह देखकर दु:ख होता है कि गत कुछ महीनों से हमारे विद्वान् प्रोफेसर साहब, जाने या अनजाने, कुछ ऐसी बातें बराबर दोहराते रहे हैं जिनसे जनता के मस्तिष्क में गांधीवाद और साम्यवाद के सम्बन्ध में बड़ी भ्रान्ति-पूर्ण धारणायें फल रही हैं। अत: यह उचित ही है कि अब प्रोफेसर कुमारप्पाजी के व्याख्यानों तथा वक्तव्यों पर खुले रूप से साफ साफ कहा जाय।

निस्संदेह हम सब ही पूंजीवादी प्रकार की विचारधारा से असंतुष्ट हैं। सच तो यह है कि पूंजीवाद एक सिद्धान्त के रूप में तथा एक अर्थशास्त्र के रूप में बहुत पहले ही मर चुका है। हम सब यह भी भलीभांति समझते हैं कि इस समय भारत की जो आर्थिक दशा है वह बहुत ही असंतोषजनक है, और इसे भी सभी ही स्वीकार करते हैं कि गरीबी, बेरोजगारी और आर्थिक असमानता की समस्याओं को शीघ्रातिशीघ्र बड़ी तेजी के साथ हल करना जरूरी है। विभिन्न राजनीतिक दलों के नेतागण धीरे धीरे इस बात को समझने लगे हैं कि अपनी आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिये गांधीवादी दृष्टिकोण ही अन्ततोगत्वा अपनाना होगा। और सर्वोदय के गतिवान् दृष्टिकोण को धीरे-धीरे सब ही समझदार लोग अधिकाधिक अपना रहे हैं। इस ओर संकेत भी करना कि कई मानों में सर्वोदय और मार्क्सवाद में समानता है, और यह कि रूस में गांधीवाद का अनुसरण किया जा रहा है, निश्चय ही सर्वोदय और मार्क्सवाद के सम्बन्ध में गहरा बुद्धिभेद फैलाना ही है, उन दोनों की कुसेवा ही है। दोनों दृष्टिकोणों में जमीन आसमान का फर्क है और इनके बुनियादी उसूल एक-दूसरे से बिलकुल खिलाफ हैं। गांधीवादी विचारधारा के महापंडित स्वर्गीय श्री किशोरीलाल मश्रूवाला ने विशेष रूप से 'हरिजन' में एक लेखमाला लिखी, जिसका तात्पर्य यह सिद्ध करना था कि "हिंसा-रहित साम्यवाद ही गांधीवाद है" वाला विचार सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है। यह लेखमाला अब संगृहीत होकर "गांधी और साम्यवाद" के नाम से एक पुस्तक-रूप में प्रकाशित भी हो गई है। श्री मश्रूवाला ने कहा था कि गांधीवाद और मार्क्सवाद एक-दूसरे से इतने अलग हैं जितना कि हरा

रंग लाल रंग से भिन्न होता है ,यद्यपि यह भी सही है कि जिन लोगों की आंखों में रंगों को न पहचान सकने वाला अंधापन होता है वह लोग दोनों को एक ही रंग में देखते हैं। हमें दुःख है कि ऐसा लगता है कि हमारे प्रोफेसर कुमारप्पाजी भी इसी मर्ज के शिकार हैं।

आचार्य विनोबा भावेजी भी बराबर हम लोगों से कहते रहे हैं कि "इन दोनों दृष्टिकोणों में कोई भी सामंजस्य सम्भव नहीं है और उनके मतभेद मौलिक हैं।" जब विनोबाजी से यह कहा गया कि गांधीवाद और साम्यवाद का मूल अन्तर यही है कि गांधीवाद बड़ी कड़ाई के साथ अहिंसा पर जोर देता है तो विनोबाजी ने कहा—"दो व्यक्ति एक दूसरे से इतना अधिक मिलते जुलते थे कि किसी भी राजनीतिक चालबाजी में एक दूसरे का स्थान ले सकता था। पर एक थोड़ा-सा फर्क था। वह यह कि एक सांस ले रहा था, तो दूसरे की सांस बन्द हो गई थी।" आचार्य विनोबा भावे ने कई मर्तबा कहा है कि "अन्ततोगत्वा यह गांधीवाद ही होगा जिस से साम्यवाद को अपनी ताकत आजमानी होगी।" उनकी तो राय वास्तव में यह है कि मार्क्सवाद और पूंजीवाद में अधिक समानता है, कारण दोनों भौतिक आवश्यकताओं और शारीरिक सुविधाओं को अधिक महत्त्व देते हैं, नैतिक स्तरों और आध्यात्मिक उत्थान को कम। महात्मा गांधी "बोलशेविज्म को आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता का आवश्यक फल" मानते थे और उन्होंने कहा था "जहां तक वह (बोलशेविज्म) हिंसा और अनीश्वरवाद पर आधारित है तहां तक मैं उस से दूर भागता हूं।" गांधीजी सदा ही "रुपये और भौतिक सुविधाओं के पीछे पागलपन्ती की दौड़" को सख्त नापसन्द करते रहे। उन्होंने सदा जीवन के ऊंचे आदर्शों पर जोर दिया, केवल जीवनयापन के उच्च स्तर पर नहीं।

बात तो असल यह है कि सर्वोदय और मार्क्सवाद मूलतः एक दूसरे से भिन्न हैं, और उनमें सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करना निश्चय व्यर्थ तो साबित होगा ही, यह भी खतरा है कि वह खतरनाक सिद्ध हो। गांधीजी के लिये मानव जीवन के प्रत्येक पहलू में आध्यात्मिक बातों का ही सबसे बड़ा मूल्य था। जहां तक मार्क्सवादियों का प्रश्न है, वह तो खुलेआम कहते हैं कि "धर्म और दर्शन जनता के लिये अफीम है।" और मार्क्स के सहयोगी फ्रेडरिक ऐंगिल्स ने कहा था, "धर्म का पहला शब्द ही झूठा है।" लेनिन का मत था कि धर्म "आध्यात्मिक दमन का ही एक रूप है।" मार्क्सवादियों की दृष्टि में मस्तिष्क पदार्थ से ही निकली हुई एक वस्तु है। इनकी दृष्टि में आत्मा की, आध्यात्मिक मूल्यों की धारणा ही मूर्खता से ओत-प्रोत विचार है, और पूंजीवादी मनोवृत्ति का द्योतक है। फिर यह भी नहीं भूलना चाहिये

कि गांधीजी उद्देश्यों की पूर्ति के लिये व्यवहार किये जाने वाले तरीकों पर बहुत महत्त्व देते थे और उन्होंने यह कभी भी नहीं स्वीकार किया कि उचित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये इस्तेमाल किये जाने वाले अनुचित तरीके भी उचित हैं। महात्माजी भारतीय स्वराज्य की प्राप्ति के लिये सत्य और अहिंसा पर बराबर अड़े रहे। पर लेनिन का विचार था कि अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये, "कोई जालबट्टा, तिकड़म, अवैध तरीके, धोखाधड़ी, सत्य को छिपाना वगैरह" आवश्यक है। १९४२ में गांधीजी ने लिखा—"यद्यपि यह सही है कि रूस ने कुछ बड़ी कामयाबी हासिल की है, तो भी उसकी सफलतायें तब तक स्थायी नहीं हो सकतीं जब तक उसके द्वारा इस्तेमाल किये गये तरीके भी साफ न हों।" महात्माजी का दृढ़ मत था कि असत्य और हिंसा के फलस्वरूप कभी भी किसी अच्छे उद्देश्य को स्थायी रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता। १९४६ में 'हरिजन' में लिखते हुए गांधीजी ने कहा था :

"मालूम पड़ता है कि कम्यूनिस्टों ने मुसीबतों को खड़ा करना ही अपना पेशा बनाया है। उनमें मेरे कुछ मित्र हैं, उनमें से कुछ मेरे लड़कों के समान हैं। पर ऐसा लगता है कि वह उचित और अनुचित में, सत्य और असत्य में कोई भी अन्तर नहीं करते। वह ऐसे आरोप को गलत बतलाते हैं, पर उनके कार्यों की जो भी रिपोर्ट मिलती है, उनसे यह आरोप सही लगता है। फिर यह भी मालूम पड़ता है कि वह अपने आदेश रूस से लेते हैं, जिसे वह अपना आध्यात्मिक घर समझते हैं, भारत को नहीं। मैं एक विदेशी शक्ति पर आश्रित रहना कदापि सहन नहीं कर सकता।"

गांधीजी मानव स्वभाव की बुनियादी अच्छाई में दृढ़ विश्वास रखते थे और इस बात का प्रचार करते थे कि हमें हृदय-परिवर्तन करने का प्रयास करना चाहिये, न कि सिर फोड़ने का। स्टालिन का यह निश्चित मत था कि "तुम तब तक अपने दुश्मन पर विजयी नहीं हो सकते जब तक अपनी आत्मा की पूरी शक्ति से तुम उससे घृणा करना न सीख लो।"

सर्वोदय और मार्क्सवाद में एक और महत्त्वपूर्ण अन्तर है। गांधीजी के लिए अहिंसक एवं सर्वोदयी समाज की बुनियाद ही जनतन्त्रवाद पर है। उनका यह भी निश्चित मत का था कि एक सर्वोदयी शासन सत्ता के स्वस्थ विकास के लिये भी राजनीतिज्ञ और आर्थिक शक्तियों का केन्द्रित होना घातक है। पर मार्क्सवादियों की दृष्टि में "जनतन्त्रवाद एक पूंजीवादी धारणा है, जिसे क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग को उखाड़ फेंकना होगा।" (लेनिन)। ट्राट्स्की ने भी इसी विचार का प्रतिपादन

किया। उसने कहा है, "जनतन्त्रवाद निर्लज्ज एवं वृथा ढोंग है"। अपनी पुस्तक "शासनसत्ता और क्रांति" में लेनिन ने स्पष्ट कर दिया है कि कम्युनिस्ट चाहते हैं कि "उन्हें ऐसा अवसर मिले कि वह पूंजीवादी शासनिक मशीनरी और उसके जनतांत्रिक रूप को कुचल दें, टुकड़े २ कर दें और पृथ्वी से उसका नामोनिशान मिटा दें।" गांधीजी सदा ग्रामोद्योग और ग्रामों के सामूहिक जीवन पर आधारित विकेन्द्रित, सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का प्रतिपादन करते रहे, पर मार्क्सवादी "सर्वहारा वर्ग की ऐसी अधिनायकशाही" चाहते हैं जो एक यन्त्रीकृत, औद्योगिक दृष्टि से अति विकसित समाज पर आधारित होगा और जिसमें बहुत ही केन्द्रित शासन-सत्ता रहेगी। मार्क्ससाद का ध्येय यह कहा जाता है कि वह श्रेणीविहीन समाज स्थापित करना चाहता है जिसमें राज्यसत्ता "अपने आप खतम हो जाएगी।" पर, जैसा प्रो० एल्डस् हक्सले ने अपनी पुस्तक "एन्डस् ऐन्ड मीन्स' में में कहा है: "ऐसी गहरी केन्द्रित शासनसत्ता को सम्भव है युद्ध द्वारा कुचल दिया जाय या नीचे से उठने वाली क्रान्ति द्वारा उखाड़ फेंक दिया जाय। यह लेशमात्र भी संभव नहीं है कि वह अपने आप खतम हो जाएगी।"

हम इस विषय पर और अधिक कुछ नहीं कहना चाहते। यह सूर्य की रोशनी के समान स्पष्ट है कि सर्वोदय और मार्क्सवाद के सिद्धान्तों में बुनियादी अन्तर है। ऐसे अवसर पर जब कि दोनों दृष्टिकोण भारत में, और विदेशों में, अपने २ अस्तित्व के लिये ही गम्भीर संघर्ष में संलग्न हैं, उस वक्त उनके सम्बन्ध में बुद्धिभेद फैलाना, यदि हम और कुछ नहीं कहें तो इनना तो कह ही सकते हैं कि अगान्धीवाद है। अतः हम प्रो० कुमारप्पाजी से निवेदन करेंगे कि वे राजनीतिक दलों को यह अवसर न दें कि अपने उद्देशों की पूर्ति के लिये वे उनके व्यक्तित्व का व्यवहार करें।

२० अप्रैल, १९५३

आर्थिक स्वतन्त्रता की ओर

कांग्रेस महासमिति के गत आगरा अधिवेशन ने अपना ध्यान मुख्यत: देश के सामने खड़े हुए गंभीर आर्थिक सवालों की ओर दिया। मसले के विभिन्न पहलुओं पर बड़ी सावधानी से विचार करने के बाद महासमिति ने बेरोजगारी और सामाजिक व आर्थिक कार्यक्रम पर जो दो प्रस्ताव स्वीकृत किये उनको हम बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते हैं। इन प्रस्तावों को "पवित्र विचार और सामान्य निरर्थक वार्ता" कहना बिल्कुल गलत होगा। देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद कांग्रेस देश में सामाजिक और आर्थिक क्रांति लाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ है, और ये प्रस्ताव उसी प्रतिज्ञा के द्योतक हैं। निश्चय ही गत कुछ वर्षों में हमने राष्ट्रीय विकास के विभिन्न क्षेत्रों में बहुत निश्चित प्रगति की है। अपने महान् नेताओं की सद्बुद्धि और योग्य नेतृत्व के फलस्वरूप हम अपनी नव-विजित स्वतन्त्रता को ठोस और स्थायी बना सके हैं। विभिन्न आर्थिक दिशाओं में भी देश ने प्रभावशाली प्रगति की है। पर सच बात तो यह है कि हम लोग स्वयं सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में प्रगति की रफ्तार से संतुष्ट नहीं हैं। इसीलिए प्रस्ताव में सही ही कहा गया है कि "प्रगति की रफ्तार को विशेष रूप से भूमि-सुधार और औद्योगिक विकास के क्षेत्रों में तेज करना चाहिए।" कांग्रेस महासमिति "भारत में गहरे भूमिसुधारों को लागू करने के कार्य को सबसे अधिक महत्त्व प्रदान करती है," ताकि "भूमिको असली जोतने वाला भूमि का मालिक" हो जाए। राज्य सरकारों को कहा गया है कि वे "भूमि आंकड़ों को संकलित करने व व्यक्तिगत आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के लिए तत्काल कदम" उठाएं, ताकि "भूमि का भूमिहीन मजदूरों में पुर्नवितरण किया जा सके।" फिर "विकास कार्यों में लगाए गए धन की मिकदार को बढ़ाने के लिए सब कोशिशें" करनी हैं और उसके लिए स्वेच्छा मार्ग और जहां संभव हो अनिवार्य बचत के तरीके को अपनाना होगा। शासनिक यंत्र का और विशेष रूप से सरकारी नौकरियों का भी "पुनर्गठन करना चाहिए ताकि कल्याणकारी राज्य की स्थापना से संबंधित मसलों को प्रभावशाली रूप से हल किया जा सके।" वर्त्तमान न्याय-व्यवस्था को भी, जो "खर्चीली है और जिसमें देर लगती है," संशोधित करना है, ताकि वह सरल बने और कम खर्चीली व शीघ्र कार्य्य करने वाली हो जाए। आयोजन कमीशन से कहा गया है कि वह पंचवर्षीय योजना की पुन: परीक्षा करे ताकि उसे "उन दिशाओं में विकसित किया जा सके जिनसे रोजगार पाने के अवसर बढ़ें।" सरकारों से कहा गया है

कि वे "कुटीर एवं छोटे पैमाने के उद्योगों के सिलसिले में अधिक जिम्मेदारी ओढ़ें," ताकि देश की मनुष्य-शक्ति के पूर्ण उपयोग के लिए अधिक अवसर प्राप्त हो सकें। कांग्रेस महासमिति ने शैक्षणिक ढांचे में परिवर्तन करने की आवश्यकता पर भी जोर दिया है, ताकि वह वर्त्तमान आवश्यकताओं के अधिक अनुरूप हो सके।

इन महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों के बाद हम लोगों को अब निश्चित दिशाओं में अग्रसर होना है, और हमें विश्वास है कि भारत सरकार और राज्य-सरकारें भी शीघ्र ही वे तमाम कदम उठायेंगी, जिन से हमारे देश के तमाम नागरिकों को बिना किसी भेद-भाव के सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी और सबों की भलाई होगी। यह आवश्यक है कि हम अपनी आर्थिक समस्याओं को बहुत जरूरी काम समझ कर जिहादी जोश के साथ हल करें। आज के तीव्र गति से चलने वाले संसार में समय का विशेष महत्त्व है और हम बहुत हाथ पांव फूंक कर, धीरे २ मन्थर गति से चलने की नीति का अनुकरण नहीं कर सकते। यह सही है कि बहुत तेज चलने में भी काफी खतरा है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि काफी तेज न चलने के खतरे भी कम नहीं। हम सबों को समझना चाहिए कि आर्थिक स्वतन्त्रता का असली अर्थ यह है कि आर्थिक समानता स्थापित हो और आज के समाज में जो गहरी विषमता देखी जाती है वह खत्म हो। जब तक अमीरों और गरीबों में गहरी खाई पड़ी हुई है, आर्थिक स्वतन्त्रता की तमाम बातें अर्थविहीन और बेकार होंगी। समाज में वास्तविक आर्थिक न्याय की स्थापना के वास्ते यह नितांत आवश्यक है कि हम भूमि से होने वाली आमदनी या किसी अन्य सूत्र से होने वाली आमदनी की उच्चतम सीमा निर्धारित करें। कांग्रेस महासमिति ने राज्य सरकारों से कहा है कि वे भूमिहीन लोगों में भूमि के पुनर्वितरण के लिए शीघ्रातिशीघ्र भूमि आराजियों की उच्चतम सीमा निर्धारित करने के लिए कदम उठावें। इस दृष्टि से ही हम प्रस्तुत संपदा-कर विधेयक का भी स्वागत करते हैं क्योंकि उससे शहरी जनता में आर्थिक समानता स्थापित होगी। यह भी आवश्यक है कि हम अपनी कर-नीति में आवश्यक दिशा-परिवर्त्तन करें ताकि आज धनवान् और धनहीनों में जो खाई दिखाई पड़ती है, वह खत्म हो।

जहां तक भूमिसुधारों का प्रश्न है, हम इस देश में बड़े पैमाने की खेती के प्रशंसकों का ध्यान पूर्वी यूरुप के युगोस्लाविया, पोलैंड, हंगरी जैसे देशों में सामूहिक खेती का जो भाग्य हुआ है, उसकी ओर दिलाना चाहेंगे। मार्शल टीटो के युगोस्लाविया में सामूहिक खेतों की वजह से न केवल "किसान किसान के विरुद्ध है, वरन् किसान राज्य का भी विरोधी हो गया है।" हंगरी में हाल में

खेतों के सामूहीकरण की धारा को 'धीमा कर दिया गया है,' कारण उससे "जनता गरीब और निराश हुई, और सारा देश ही घोर आर्थिक संकट के तट पर पहुंच गया।" (देखिये लंडन टाइम्स, जुलाई ६) चीन में भी किसानों को अधिक स्वतन्त्रता देने का एक आन्दोलन शुरू हो गया है और इसके लिए सामूहिक खेती को स्वेच्छा पर आधारित कर दिया गया है, और यह निर्णय किया गया है कि ऐसे काम न किये जाएं जो 'एक व्यक्तिगत आर्थिक इकाई के रूप में किसानों की गतिविधि को भुलायें अथवा हलके से भी रुकावट डालें।" सोवियत रूस में भी खेतों के सामूहीकरण का इतिहास स्पष्टरूप से बताता है कि हिन्दुस्तान में ऐसे प्रयोगों को चलाने में हमें बड़ी सर्तकता से काम लेना होगा। अति विकसित यांत्रिक खेती के आधार पर खेतों को एक साथ मिलाकर सामूहिक खेती करवाने की बजाय हम लोगों का यह प्रयास होना चाहिए कि हम छोटे पैमाने के किसानों को यह समझायें कि वे मवेशी, सिंचाई, खाद जैसे अपने उत्पादन-साधनों को एकत्रित करें और बोवाई, निराई, कटाई इत्यादि कार्यों को सहकारी आधार पर एक दूसरे को सहायता देते हुए करें। इसी कारण ही हम लोगों ने आचार्य विनोबा भावे के भूदानयज्ञ का स्वागत किया है कि छोटे पैमाने की घनी खेती के आधार पर भूमिहीनों में भूमि पुनर्वितरण करने के लिए नायाब तरीका है।

बेरोजगारी की समस्या वास्तव में बड़ी ही गंभीर है जिसे हमें कई मोर्चों पर हल करना होगा। इस विषय पर हम पहले भी अपना मत प्रगट कर चुके हैं और हमने बेरोजगारी को भारत का शत्रु नंबर एक करार दिया है। इसे प्रभावात्मक रूप से खत्म करने के लिए आवश्यक है कि हम कुटीर एवं छोटे पैमाने के उद्योगों के विकास का पूरा अवसर प्रदान करें। जब तक हमारा उत्पादन का तरीका श्रम बचाने वाला होने की बजाय श्रम का उपयोग करनेवाला नहीं हो जाता तब तक देश में बेरोजगारी अथवा अर्द्ध-रोजगारी की समस्या को हम पूर्णरूप से हल नहीं कर सकते। यह बात भावुक नहीं है, न ही यह कोई गांधीवादी "झक" है। यह सीधा सादा गणित है। हां, निश्चय ही यांत्रिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान द्वारा हम अपने कुटीर उत्पादन को जितना सूक्ष्म और कार्यकुशल बना सकें, बनाना चाहिए। जनता का भी कर्त्तव्य है कि बड़ी-बड़ी मिलों और कारखानों का सामान प्रयोग करने की बजाय वह कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योओं की वस्तुओं का व्यवहार करे। भारत सरकार को भी अपनी आयात-निर्यात नीति में ऐसा दिशा-परिवर्तन करना चाहिए जिससे भारत के विकेंद्रित उद्योगों के छोटे पैमाने वाले उत्पादकों का भला हो। जिन उपभोग के सामानों का उत्पादन अपने देश में ही आसानी से कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों द्वारा हो सकता है उनका आयात

सख्ती से कम करना चाहिए और बन्द भी कर देना चाहिए। हमारे शिक्षा-क्रम में भी उग्र तब्दीलियों की जरूरत है, ताकि हमारे नौजवानों को अपने जीविकोपार्जन के लिए कठिन श्रम करने की आदत पड़े और क्षमता बढ़े। हमारे आज के स्कूल व कालेज अच्छे-खासे ऐसे कारखाने हो गए हैं जो शिक्षित बेकारों की फौज को निकालते हैं और ये शिक्षित बेकार हमारी जनतांत्रिक परम्पराओं के लिए गहरे खतरे हैं।

आगरा कांग्रेस महासमिति अधिवेशन द्वारा सरकारी नौकरियों का पुनर्गठन संबंधी जो प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है उसका हम स्वागत करते हैं। हम को बड़ी आशा है कि हमारी राज्य सरकारें इस संबंध में योजना कमीशन की जो सिफारिशें हैं उनको दृढ़-प्रतिज्ञा के साथ पूरा करेंगी। अपने शासनिक यंत्र को और लचीला बनाने के लिए, उसके वर्त्तमान बेलचीलेपन को दूर करने के लिए प्रोफेसर एपलवी के सुझावों पर भी ध्यान देना चाहिए। जहां तक न्याय-व्यवस्था में सुधार का प्रश्न है, हमारा सुझाव है कि भारत सरकार शीघ्र ही एक शक्तिवान् आयोग बनावे जो पूरे मसले की जांच कर एक वर्ष के अन्दर पूरे मसले पर अपनी सिफारिशें पेश करे। योजना कमीशन को संचार एवं वित्त मंत्रालय के निकट सहयोग से देश में, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, पड़े किसी उपयोग न आने वाले धन को विकास कार्यों के लिए संगृहीत करने की दृष्टि से विभिन्न योजनाएं बनानी चाहिएं। ऐसी स्कीमों में इस बात की विशेष सुविधा दी जाए कि विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट स्थानीय योजनाओं के लिए रकमें इंगित कर दी जाएं।

यह भी प्रसन्नता की बात है कि कांग्रेस महासमिति ने कांग्रेस कार्यकारिणी द्वारा प्रस्तावित कांग्रेस संविधान के संशोधनों को अधिकांशतः स्वीकार कर लिया। इन संशोधनों का तात्पर्य यह है कि कांग्रेस संगठन को पुनः शक्ति प्रदान की जाए ताकि भारत में आर्थिक क्रांति लाने के लिए वह और भी तेज और सूक्ष्म अस्त्र बन सके। हमारा विश्वास है कि कांग्रेस के, और अपने भूमि एवं औद्योगिक ढांचे के, तथा शासनिक यंत्र, शिक्षा-क्रम, वाणिज्य नीति तथा न्याय-व्यवस्था के पुनर्गठन के पश्चात् हम अपने महान् देश के लिए आगामी कुछ वर्षों में आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकेंगे। हमारा पहला स्वातंत्र्य-संग्राम १८५७ में हुआ; १९४७ मे हमने आजादी पाई; और अब आर्थिक स्वतंत्रता का संग्राम १९५७ तक पर्याप्त रूप से फलीभूत होना चाहिए।

२४ जुलाई, १९५३

समाजवाद और सर्वोदय

संसद में, शायद पहली बार, भारत की आर्थिक नीति पर पूरी बहस हुई है। बहस शुरू करते हुए श्री चिंतामणि देशमुख ने साफ तौर पर कहा कि "अब हमारी आर्थिक नीति का मुख्य उद्देश्य उचित समय में, जैसे कि अब से १० साल में, पूरी रोजगारी ले आना है।" यह कोई बहुत अधिक महत्वाकांक्षी लक्ष्य नहीं है। "इस लक्ष्य प्राप्ति में", वित्त मंत्री ने कहा, "सार्वजनिक और निजी क्षेत्र, दोनों में विस्तार के लिए काफी गुंजाइश है।" श्री देशमुख के तखमीने के मुताबिक, अगर पूरी रोजगारी हमारा ध्येय है तो लगभग २ करोड़ ४० लाख धंधे पैदा करने होंगे, और इस काम में कुल १,००० करोड़ रुपये प्रति वर्ष की लागत आएगी। राष्ट्रीय हित में प्रमुख उद्योगों के विकास की अनिवार्यता को देखते हुए और इस बड़ी संख्या का ख्याल रखते हुए वित्त मंत्री का विचार था कि "छोटे उद्योगों और ग्रामोद्योगों के विकास को बढ़ावा देना आवश्यक है ताकि रोजगारी के लिए और जनता के साधनों की उन्नति के लिए अधिकाधिक अवसर पैदा हो सकें।" बहस के बीच में बोलते हुए प्रधान मंत्री ने "जाति-विहीन और वर्गविहीन समाज" प्राप्ति की अपनी नीति की पुनः घोषणा की। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि समाजवाद की ओर भारत का झुकाव कट्टरपंथी झुकाव नहीं है बल्कि पूरी रोजगारी, अधिक उत्पादन और आर्थिक न्याय के मूल उद्देश्यों की प्राप्ति का एक व्यावहारिक तरीका है। श्री नेहरू ने बताया कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के परस्पर संघर्ष के बारे में बात करना बहुत कुछ बेमानी है। समाजवादी ढांचे में सार्वजनिक क्षेत्र निश्चय ही अधिकाधिक महत्व प्राप्त करेगा। लेकिन "मौलिक महत्व रखने वाले मूल उद्योगों पर सार्वजनिक नियंत्रण रखते हुए निजी क्षेत्र के बढ़ने के लिए बहुत काफी गुंजाइश होगी। देश में, आखिर सबसे बड़ा निजी क्षेत्र तो अपनी छोटी आराजी पर काम करने वाले किसान का निजी क्षेत्र है।"

प्रधान मंत्री और वित्त मंत्री दोनों ने घोषणा की कि भारत की औद्योगिक नीति आज भी बहुत-कुछ १९४८ की घोषणा के अनुसार है यद्यपि "समय समय पर अलग अलग पहलुओं पर जोर दिया जाता रहा है।" यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि यद्यपि निजी उद्योग के लिए अब भी काफी गुंजाइश है पर "निहस्तक्षेप-नीति के दिन बीत चुके हैं।" "वर्तमान परिस्थितियों में, विशेषतः हमारे जैसे राज्य के लिए जिसने अपने सामने एक मंगल राज्य का आदर्श रखा है, सार्वजनिक

और निजी व्यवसाय के बीच पूर्ण विरोध नहीं हो सकता और न राज्य के नियंत्रण-कारी कृत्यों की आवश्यकताओं को लेकर ही कोई मतभेद हो सकता है।" बहरहाल सबसे जरूरी यह है कि बचत और पूंजी लगाने की दर को बढ़ाया जाए। भारत-वासियों को पूरा रोजगार दिलाने के लिए, हिसाब लगाया गया है, पूंजी लगाने की दर राष्ट्रीय आय की १० प्रतिशत होनी चाहिए। लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि अर्ध-विकसित देशों का आर्थिक आयोजन केवल पूंजी पर ही निर्भर नहीं रह सकता। असली समस्या राष्ट्र की बेकार पड़ी हुई मानव-शक्ति को संगठित करना और उसे उपयोग में लाना है। इसी दृष्टिकोण से छोटे उद्योगों और ग्रामोद्योगों के विकास पर अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

वित्त मंत्री के इस कथन में हमें संदेह है कि पूर्णतर रोजगारी दिलाने के लिए अतिरिक्त धंधे "गैर-कृषि क्षेत्र में ही प्रत्यक्षतः उत्पन्न करने होंगे।" अगर दूसरी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति तक देश में १ करोड़ २० लाख नए धंधे पैदा करने हैं तो शहरी इलाकों में ही ऐसा करना संभव होगा। निस्संदेह, हमारा यह खयाल जरूर है कि धान की हाथ-कुटाई, गांव की घानियों से तेल निकालने का काम, सूत, रेशम और ऊन की हाथ से बुनाई-कताई, चमड़े का काम, पशु-पालन, गुड़ और खांडसारी जैसे कृषि-उद्योगों की दिशा में ही अतिरिक्त रोजगार बड़े पैमाने पर पैदा हो सकेगा। हमारे शहरों में पहले से ही बहुत काफी भीड़ है और गांवों की आबादी कम होते जाने की प्रक्रिया प्रायः निरन्तर चलती आ रही है। अगर हम शहरी इलाके के बेकार लोगों को छोटे पैमाने के उद्योगों द्वारा रोजगार दिलाने की कोशिश करते हैं तो शहरों में निश्चय ही और ज्यादा भीड़ बढ़ेगी और अन्य समस्याएं—सामाजिक, आर्थिक व नैतिक—उठ खड़ी होंगी। अतः पूरे रोजगार की बुनियादी समस्या का सबसे अच्छा हल यही है कि किसान या दस्तकार को ग्राम अथवा कुटीर-उद्योग के रूप में उसके घर में ही काम दिया जाए।

यह लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब छोटे उद्योगों के उत्पादन क्षेत्र को सुरक्षित रख कर बड़े और छोटे उद्योगों के बीच की अस्वस्थ प्रतियोगिता को रोकने का राज्य निर्णय करे। उदाहरण के लिए, कोई सबब नहीं कि खाने के काम में लाए जाने वाले तेलों का उत्पादन गांव की घानियों के लिए ही क्यों न सुरक्षित रखा जाए। धान की हाथ कुटाई को, जिससे हमारे लाखों मजदूरों को लाभकर रोजगार मिलता रहा है, चावल की मिलों पर, खास तौर पर गांवों में, प्रतिबन्ध लगा कर बढ़ावा दिया जा सकता है। जहां तक चमड़े के काम का सम्बन्ध है कारखानों को चप्पल और सैण्डल जैसे देशी जूतों को बनाने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए।

केवल इसी प्रकार के संरक्षण अथवा उत्पादन क्षेत्रों के सीमाबन्धन द्वारा ही हमारे उन लाखों लोगों को, जो कि बिल्कुल बेरोजगार हैं या साल में केवल कुछ महीनों के लिए आंशिक रूप से रोजगार में रहते हैं रोजगार की अधिक सुविधाएं प्रदान करने की आशा दी जा सकती है। रोजगार दिलाने का इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

भारत में समाजवादी अर्थ-व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण को सब रोगों के लिए रामबाण समझना व्यर्थ है। निस्संदेह यह आवश्यक है कि लोहा और इस्पात, कोयला, बिजली और भारी मशीनों के बुनियादी उद्योगों का स्वामित्व और प्रबन्ध राज्य द्वारा होना चाहिए। लेकिन कपड़ा, चीनी, तेल आदि जैसी उपभोग की वस्तुएं उत्पादित करने वाले अन्य मौजूदा उद्योगों के राष्ट्रीयकरण करने की कोशिश जरूरी नहीं है। बल्कि इसके विपरीत, उपभोग की वस्तुएं उत्पादित करने वाले बड़े पैमाने के उद्योगों का सहकारी समितियों के रूप में क्रमशः विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। संक्षेप में, हम इस देश में एक ऐसा समाजवाद कायम करना चाहते हैं जो कि उन देशों के समाजवाद से भिन्न होगा जहां कि आबादी कम है और पूंजी बहुत काफी है। हमारे जैसे देश में, जहां कि आबादी घनी और पूंजी कम है, समाजवादी अर्थ-व्यवस्था विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था के रूप में ही होनी चाहिए। भारत में समाजवाद का अर्थ सर्वोदय ही हो सकता है।

एक और बात है जिसे महात्मा गांधी मुतबातिर दोहराया करते थे। सर्वोदय अर्थ-व्यवस्था केवल अधिक धन व मौलिक वस्तुओं के पैदा करने और इकट्ठा करने पर ही आधारित नहीं होनी चाहिए। हमें सदा यह याद रखना चाहिए कि आदमी सिर्फ रोटी पर ही जिन्दा नहीं रहता। अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ ही हमें अपने सांस्कृतिक और नैतिक स्तरों को ऊंचा उठाने की कोशिश करनी चाहिए। इसीलिए गांधीजी 'जीवन के स्तर' न कि 'जीवन-यापन के स्तर' पर जोर दिया करते थे। गांधीजी ने कहा कि "पाशविक भूख बढ़ाने और उसकी संतुष्टि के लिए दुनिया के छोर तक जाने के लिए दूरी और समय का खात्मा कर देने की पगली ख्वाहिश से मुझे दिली नफरत है।" "आवाज की तेजी या रफ्तार लगातार बढ़ाते रहने से" गुरुदेव टैगोर ने लिखा है, "हमें चीख के अलावा और कुछ न मिलेगा।" ईसा-पूर्व चौथी शताब्दी के विख्यात भारतीय अर्थशास्त्री और विचारक कौटल्य ने अपने "अर्थशास्त्र" में लिखा है कि 'समस्त पृथ्वी और चारों दिशाओं पर प्रभुत्व पाकर भी जिसका चरित्र उलटा है, जिसकी इन्द्रियां अपने नियंत्रण में

नहीं है. वह शीघ्र ही नष्ट हो जायगा।" इसीलिए हमारे उपराष्ट्रपति डाक्टर राधा-कृष्णन ने भारतीय जीवन-प्रणाली को "नैतिक समाजवाद" कहा है।

भारत में आत्म-निर्भर और स्वशासित ग्राम समुदायों अथवा पंचायतों के रूप में विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था और 'मिले-जुले' जनतन्त्रवाद की गांधीवादी प्रविधि द्वारा ही विशुद्ध समाजवाद स्थापित किया जा सकता है। राजनीतिक और आर्थिक सत्ता का निर्भीकता के साथ विकेन्द्रीकरण करने पर हमें एक ऐसी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था कायम करने में मदद मिलेगी जो कि संसार के अन्य देशों के लिए भी एक आदर्श होगी। केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था वाला अतिकेन्द्रित राज्य अधिनायकवादी या तानाशाही बनने लगता है और फलस्वरूप उसकी सभी बुराइयां पैदा होने लगती हैं। भारत को ऐसी कठोर तथा अत्यधिक केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था से दूर रहना चाहिए। इसके अलावा सच्चा समाजवाद तभी स्थापित हो सकता है जब समाज का गठन करने वाले व्यक्तियों के विचारों में प्रत्यक्ष और वास्तविक परिवर्तन हो।" "समाजवाद की शुरुआत" गांधीजी ने कहा है, "पहले मुरीद से शुरू होती है।" "अगर एक भी ऐसा आदमी हो तो उस एक के आगे आप सिफर बढ़ाए जा सकते हैं और पहले सिफर से दस और उसके बाद बढ़ाए जाने वाला हर सिफर पहले की संख्या को दस गुना बढ़ा देगा लेकिन अगर शुरूआत करनेवाला ही सिफर हो तो उसके आगे कितने ही सिफर क्यों न बढ़ाएं नतीजा सिफ़र ही रहेगा।" जब व्यक्ति बदलते हैं तो समाज भी बदलता है। अतः सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए हम सबको "अपना प्रकाशदीप अन्तर्मुखी बनाना होगा" और स्वयं अपने सुधार से काम शुरू करना होगा। सच्चा समाजवाद पाने का कोई छोटा रास्ता नहीं है। समाजवाद केवल एक आर्थिक सिद्धान्त ही नहीं बल्कि एक जीवन-प्रणाली भी है।

७ जनवरी, १९५५

प्रधान मंत्री की चीन यात्रा

प्रधान मंत्री की चीनयात्रा, निस्संदेह, विश्व के वर्तमान इतिहास की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और अर्थपूर्ण घटना है, एशिया के इतिहास में एक मोड़ है। यद्यपि न्यूयार्क टाइम्स ने श्री नेहरू की पीकिंग यात्रा "शोचनीय" बताई है किन्तु संसार के सभी समाचारपत्रों ने भारत और चीन के प्रधान मंत्रियों की इस स्मरणीय भेंट को एक "प्रमुख घटना" कहा है। लंदन के न्यूज क्रानिकल का कथन है कि यह मुलाकात "इतिहास बदल सकती है" क्योंकि "आज की एक सबसे बड़ी समस्या चीन की बात पश्चिम को और पश्चिम की बात चीन को समझाना है।" प्रावदा ने कहा है कि श्री नेहरू की चीनयात्रा "एशिया और समूची दुनिया में अमन कायम करने के लिए एक अहम कदम है।" पीकिंग में श्री नेहरू का स्वागत चीन के इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी। चीन ने "बाहर से आने वाले किसी भी राजनेता का इतना भव्य स्वागत न किया था।" जब श्री नेहरू हवाई अड्डे से एक खुली गाड़ी में निकले तो शहर जाने वाली दस मील लम्बी सड़क पर लगभग दस लाख लोगों ने उनका जयकार किया। चीन के प्रधान मंत्री श्री चौ एन-लाई ने कहा कि "चीन और भारत के बीच शांतिपूर्ण निर्वाह और मैत्रीपूर्ण सहयोग निश्चय ही एशिया के अन्य देशों और सारे संसार के देशों के बीच परस्पर शांतिपूर्ण निर्वाह की सुविधा पैदा कर देगा"। श्री नेहरू ने उत्तर में कहा कि आज की उलझी हुई और मुश्किल दुनिया में चीन और भारत का संबंध बहुत ज्यादा अहमियत रखता है। "आखिर, इंसानी हस्ती हर चीज से बड़ी है और भारत व चीन में रहने वाले करीब एक अरब इंसानों की हस्ती माननी ही पड़ेगी।"

चीन जाते-आते श्री नेहरू को बर्मा और हिन्द-चीन के तीनों राज्य, अर्थात् लाओस, वीतनाम और कम्बोज जाने का भी मौका मिला था। डाक्टर हो ची-मिन्ह के साथ "एक दीर्घ आलिंगन" वाली उनकी भेंट एशिया में शांति और भ्रातृत्व की शक्तियों को पुष्ट करने में अत्यन्त मूल्यवान् सिद्ध हुई। डाक्टर हो ची-मिन्ह ने श्री नेहरू को आश्वासन दिलाया कि वह "हिन्द-चीन युद्ध विराम समझौते के अधीक्षण करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय आयोग को अपना पूर्ण सहयोग" देते रहेंगे। उन्होंने विभिन्न देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध और शांतिपूर्ण सहयोग कायम करने वाले "पांच सिद्धान्तों" में अपनी आस्था पुनः प्रकट की। तिब्बत के दलाई लामा, जो कि श्री नेहरू से पहली बार मिले और बोले थे, चकित हो गए कि ६५ वर्षीय

भारतीय प्रधान मंत्री "इतने जवान दिखाई देते हैं।" निषिद्ध नगरी में, जो कि चीनी सम्राटों का प्राचीन प्रासाद है, चीनी जनतन्त्र के अध्यक्ष माओत्से तुंग से श्री नेहरू की भेंट भी एक "ऐतिहासिक दृश्य" था जिसका महत्त्व न केवल एशिया में वरन सारे संसार के इतिहास के लिए असाधारण सिद्ध हो सकता है।

गत दो हजार वर्षों से भारत और चीन अच्छे मैत्रीपूर्ण पड़ोसियों की तरह रहते आए हैं। अब ये दोनों प्राचीन देश आत्मोन्नति के पथ पर हैं। इन्होंने गुलामी और उपनिवेशवाद की बेड़ियां तोड़ दी हैं और विश्व का भविष्य निर्माण करने में वे निश्चय ही महत्त्वपूर्ण योगदान देंगे। पश्चिमी शक्तियां अभी तक एशियाई देशों पर अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश करती आई हैं; वे एशियाई मुल्कों को आपस में लड़ाती रही हैं। लेकिन अब जमाना बदल चुका है; पश्चिम अब पूर्व को अपने अधीन नहीं रख सकता। एशिया के दो सबसे बड़े देश, भारत और चीन आपस में मिल गए हैं—सामूहिक आक्रमण संगठित करने के लिए नहीं, "सामूहिक शांति" संगठित करने के लिए। जैसा कि श्री नेहरू ने पीकिंग से एक रेडियो भाषण में कहा था, "दोनों देश परस्पर सहायता और सहयोग करेंगे, संसार के महानतम साहसिक कार्य में, विश्व में शांति की दृढ़ स्थापना के लिए।" नेहरू और माओ के बीच बिदाई का दृश्य, जिसमें माओ ने एक प्राचीन चीनी कविता कही थी, भारत के प्रति चीनी जनता की मैत्रीपूर्ण भावना का द्योतक था। श्री नेहरू ने भी अल्प समय में अपने प्रति प्रदर्शित "सहृदयता और मैत्री" के लिए चीन की सरकार और जनता के प्रति आभार प्रकट किया। श्री नेहरू ने श्री माओत्से-तुंग को "एक महान् योद्धा, एक महान् क्रान्तिकारी, एक महान् निर्माता और संस्थापक" कहा और साथ ही आशा प्रकट की कि "अब वह एक महान् शांति-निर्माता भी बनेंगे।"

यह सोचना गलत है कि चीन के साथ अधिक निकट सम्पर्क स्थापित करने से भारत में कम्युनिस्टों को प्रोत्साहन मिलने की संभावना है। प्रधान मंत्री नेहरू ने पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है कि भारत ने शांति और जनतन्त्रवाद की राह अपनायी है। हमारी राष्ट्रीय योजना जनतन्त्रवादी सिद्धान्तों पर आधारित है और किसी भी तरह की अधिनायकवादी व्यवस्था की कल्पना नहीं की गई है। इसके विपरीत, चीन रूस के पीछे पीछे चलने वाला न होते हुए भी, भिन्न तरीके काम में ला रहा है। स्पष्ट है कि भारत इन सब तरीकों का हिमायती नहीं है। भारत, महात्मा गांधी के उपदेशानुसार, जनतन्त्रवाद के पथ का अनुसरण करने का निश्चय कर चुका है। किन्तु, फिर भी कई ऐसी बातें हैं जिनमें भारत और चीन दोनों महान् देश सर्वकल्याण के लिए परस्पर सहयोग कर सकते हैं। श्री नेहरू ने चीनबासियों से

अपने एक रेडियो भाषण में कहा कि, "भारत और चीन कई तरह से परस्पर सहयोग दे सकते हैं, भले ही किसी हद तक दोनों की समस्याएं भिन्न हों और दोनों के तरीकों में भी फर्क हो।" "दोनों राष्ट्रों और दोनों जनताओं के बीच असली जरूरी चीज सहनशीलता और सद्भावना है। अगर ये चीजें मौजूद हैं तो बाकी चीजें खुदबखुद पैदा हो जाएँगी। मुझे यकीन है कि ये दोनों बातें भारत और चीन में मौजूद हैं।" भारत भिन्नता में एकता के सिद्धान्त में सदा से विश्वास रखता आया है। हमारे इस प्राचीन देश ने अपने सदियों के इतिहास में विभिन्न जातियों और संस्कृतियों को सहन किया है और सफलतापूर्वक उन्हें जज्ब किया है यही सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रयुक्त किये जा सकते हैं। हालांकि भारत और चीन की राजनीतिक व सामाजिक विचारधाराएं बुनियादी तौर पर भिन्न हैं, कोई सबब नहीं कि मानवता की भलाई के लिए दोनों देश निकटतर न आएँ और "एक शांति क्षेत्र" कायम करने के लिए अथक प्रयत्न न कर सकें। "परस्पर निर्वाह" का सिद्धान्त "जीयो और जीने दो" के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त के अनुरूप ही है। यदि संसार "भय की मानसिक बीमारी" त्याग देता है और बुनियादी सैद्धांतिक मतभेदों के बावजूद भी अगर विभिन्न देश साथ-साथ रहना सीख लेते हैं तो इसी में हम सब की भलाई है। आज अमेरिका साम्यवाद से डरता है और रूस पूंजीवाद से। यदि विभिन्न राष्ट्रों द्वारा सचाई के साथ परस्पर निर्वाह और अ-हस्तक्षेप की नीति बरती जाय तो ये सभी भय सुबह के कुहासे की तरह गायब हो जाएंगे।

एक खास बात और है जिसका हम उल्लेख करना चाहेंगे। श्री नेहरू ने "विश्व इतिहास की झलक" नामक अपनी पुस्तक में कहा है कि "अतीत में भारत की शक्ति और सहिष्णुता का आधार ग्राम जनतन्त्रों अथवा स्वशासित पंचायतों की व्यापक व्यवस्था में प्रतीत होता है।" श्री नेहरू ने आगे चल कर कहा है कि "भारत की तरह ही चीन में भी सामाजिक व्यवस्था की दृढ़ता गांवों पर आधारित थी।" महात्मा गांधी जनतन्त्रवादी संस्थाओं के इस पहलू पर हमेशा जोर दिया करते थे। उनके लिए ग्राम लोकतन्त्रों के रूप में विकेन्द्रित जनतन्त्र स्वशासन और स्वराज्य की सर्वोत्तम व्यवस्था थी। केन्द्रीकरण और अधिनायकवाद के तरीके अन्त में हिंसा और मानवता को सैन्यीकरण की ओर ले जाते हैं। आधुनिक संसार में जनतन्त्रवाद और अधिनायकवाद, हिंसा और अहिंसा, शांति और युद्ध की शक्तियों के बीच एक दानवी संघर्ष छिड़ा हुआ है। अर्थशास्त्र की भाषा में यह संघर्ष पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच है। इन सब संघर्षों को केवल विकेन्द्रीकरण की ऐसी निर्भीक नीति से सुलझाया जा सकता है जो कि दोनों विचारधाराओं की उग्रता त्याग कर दोनों की अच्छाइयों के बीच तालमेल ला देगी। यदि भारत और चीन विकेन्द्रित

जनतन्त्रवादी अर्थ-व्यवस्था के इस महान् प्रयोग में परस्पर सहयोग दे सकें तो आधुनिक संसार को पीड़ित रखने वाले विभिन्न रोगों का एक स्थायी समाधान प्राप्त हो सकेगा। हमें आशा और विश्वास है कि दोनों देशों के बीच की वर्तमान सद्भावना से इस प्रयोग को कार्यान्वित करने का बेहतर मौका हासिल हो सकेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत शांति स्थापित करने का पार्ट अदा कर रहा है। भारत ने दोनों में से किसी शक्ति गुट में शामिल न होने में बहुत सावधानी बरती है। भारत की शांति की नीति नकारात्मक या निश्चेष्टात्मक नहीं है। वह तो एक सकारात्मक और सबल नीति है। संघर्षरत विचारधाराओं के सच्चे संयोग से ही केवल संसार में शांति विराज सकती है। इस प्रकार का संयोग विकेन्द्रित जनतन्त्र और विकेन्द्रित औद्योगीकरण की गांधीवादी राह के अनुसरण से ही प्राप्त हो सकता है। कोरी पवित्र भावनाओं के बूते हम बहुत दूर न जा सकेंगे। विचारधाराओं का एक सच्चा संयोग ढूंढ़ निकालने के इस महान् कार्य में भारत और चीन दोनों मिल कर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। हमें पूरी आशा है कि इन दोनों देशों की मित्रता का बंधन इस महान् और श्रेष्ठ कार्य का पथ प्रशस्त करेगा।

७ नवम्बर, १९५५

विद्यार्थी उपद्रवों का अर्थशास्त्र

देश के सार्वजनिक जीवन में शांतिपूर्ण एवं जनतांत्रिक परंपराओं को स्थापित करने में दिलचस्पी रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को गत कुछ सप्ताहों में लखनऊ में जो कुछ बातें हुई, उन पर बहुत गम्भीरता से सोचना और विचारना होगा। लखनऊ का पूरा उपद्रव एक बहुत ही मामूली सी बात पर खड़ा हुआ। विश्वविद्यालयों की विद्यार्थी यूनियनों की सदस्यता अनिवार्य हो, अथवा स्वेच्छा पर आधारित हो, यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर ईमानदारी से लोगों में मतभेद हो सकता है। भारत में भी, और विदेशों में भी, विभिन्न कालेजों और विश्वविद्यालयों की विद्यार्थी यूनियनों के लिए विभिन्न प्रकार के विधान हैं। हम लोगों को यह समझना है कि विद्यार्थी यूनियनें मजदूर संघों के समान कदापि नहीं हैं। मजदूर संघों का संगठन मिल-मालिकों के खिलाफ अपने आर्थिक हितों की सुरक्षा करने के लिए किया जाता है। वास्तव में विद्यार्थी यूनियनों का तात्पर्य तो यह है कि विश्वविद्यालयों में जो शिक्षा विद्यार्थियों को दी जाती है, उसके पूरक रूप में, सामान्य शिक्षा क्रम से कुछ हटकर, विद्यार्थियों की शिक्षा हो। अतीत काल से भारत में विद्यार्थियों एवं अध्यापकों का सम्बन्ध बड़ा पवित्र और उच्च स्तर का रहा है। निश्चय ही यह बड़े दुर्भाग्य की बात होगी यदि भारत में विद्यार्थियों एवं अध्यापकों का सम्बन्ध आर्थिक स्तर पर काम करने वाली मजदूर यूनियनों के समान हो जाए। इसी दृष्टि से ही हाल में लखनऊ और इलाहाबाद के विश्वविद्यालयों के उपद्रवों को हम बहुत ही अभाग्यपूर्ण समझते हैं। अपनी यूनियनों के संविधान के सम्बन्ध में विद्यार्थियों को भले ही कोई भी शिकायत रही हो, परन्तु उन्होंने जो हिंसात्मक और अनुशासन-विहीन कार्य किये, उनकी तो गहरी निन्दा होनी ही चाहिये।

पर हम निवेदन करेंगे कि महज निन्दा कर देना, परन्तु विद्यार्थी समाज के अन्दर आज जो असंतोष और बेचैनी दिखलाई पड़ रही है उसका गहरा अध्ययन न करना, बड़ा ही गलत होगा। कुछ वर्ष पहले जब मैं विश्व के दौरे पर गया था तो उस समय कई देशों में विभिन्न विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि हमारे भारतीय विद्यार्थी किसी भी प्रकार किसी दूसरे देश के विद्यार्थियों से कम नहीं हैं। उनकी बुद्धि बड़ी प्रखर है। वे साधनों को जुटाने में होशियार हैं और कठिन परिश्रम भी वे करते हैं। हमारे नवयुवकों ने देश के स्वातन्त्र्य संग्राम में भी आगे बढ़कर हिस्सा

लिया था। भारत के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में जो अनुसंधान और यांत्रिक प्रकार के विभिन्न कार्य हो रहे हैं, उसमें भी हमारे भारतीय विद्यार्थी बड़ा प्रशंसात्मक कार्य कर रहे हैं। निश्चय ही हमें अपने विद्यार्थियों की सफलता पर फख्र है और उनकी क्षमता पर गहरा विश्वास है। यदि आज वे कुछ क्रोधित मुद्रा में हैं तो उसके कारण एक नहीं, अनेक हैं। उनके आन्दोलन का एक कारण तो राजनीतिक है। कुछ ऐसे राजनीतिक दल हैं जो विद्यार्थियों का व्यवहार अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करते हैं। निश्चय ही यह स्वास्थ्यकर शैक्षणिक परम्पराओं के विकास के लिए घातक हैं और इसकी हमें गहरी निन्दा करनी होगी। हमारा निश्चित मत यह रहा है कि हमारे नौजवानों को, जब तक वे विद्यार्थी हैं, राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए, यद्यपि यह जरूरी है कि उनको राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों में गहरी दिलचस्पी रखनी चाहिए। अपने अध्ययन को समाप्त करने के बाद उनको इस बात की पूरी स्वतन्त्रता रहेगी कि वे देश के जिस राजनीतिक दल में चाहें उसमें सम्मिलित हों, पर जैसा कि गांधीजी ने कहा था: "विद्यार्थियों को अनुसंधानकर्ता होना चाहिए, राजनीतिज्ञ नहीं।"

विद्यार्थियों की बेचैनी का दूसरा कारण यह है कि उनके और उनके अध्यापकों के बीच में खाई बढ़ती जा रही है। हमारे कालेजों और विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की अधिक दिलचस्पी अब इस बात में रहती है कि उनको एक्जामिनरशिप मिल जाए, वे परीक्षक होकर पैसा पावें, और उनका बड़ा ध्यान आपसी दलबन्दियों में रहता है। इस बात की चिन्ता उनको कम रहती है कि उनका प्राथमिक कार्य नौजवानों को स्वस्थ शिक्षा प्रदान करना है। हमारे अध्यापक जो उदाहरण अपने विद्यार्थियों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं उनसे हमारे विद्यार्थियों को कदापि ऊंचे आदर्श और विचार की शिक्षा नहीं मिलती। यह भी मार्के की बात है कि आजकल हमारे अध्यापकों में अध्ययनशीलता का स्तर बहुत काफी गिरा हुआ है और इसके कारण ही हमारे आजकल के शिक्षालयों में वास्तविक अध्ययनशील व्यक्ति बिरले ही दिखाई पड़ते हैं। हमारे स्कूल और कालेज तो आजकल व्यवसाय और व्यापार के केन्द्र हो गए हैं। वास्तव में उनका रूप तो आजकल एक ऐसे कारखाने के समान है जो बाद में बेरोजगार हो जाने वाले ग्रेजुएटों को तैयार करता है। वे विद्या के मन्दिर तो कदापि नहीं रह गये। इसी कारण ही हमारी शिक्षा संस्थाओं में एक अवांछनीय प्रकार की मजदूर संघीय भावना प्रदर्शित होती है, जिसके परिणाम बड़े ही दुःखद हुआ करते हैं। पुराने जमाने में हमारे गुरुओं की मुख्य चिन्ता अपने शिष्यों को ज्ञान एवं चरित्र प्रदान करने की रहती थी और वे ट्यूशन फीस की बहुत कम चिन्ता किया करते थे, जिसे विद्यार्थी अपनी अपनी क्षमता के अनुसार दे दिया करते थे।

हमारी शिक्षा संस्थायें आजकल मुख्यतः वित्तीय पहलुओं की चिन्ता किया करती हैं और विद्यार्थियों के नैतिक, भावुक एवं मस्तिष्क के विकास की ओर बहुत कम ध्यान देती हैं। निश्चय ही यह बड़ी दुःखद स्थिति है और इस ओर हमें तत्काल गहरा ध्यान देना चाहिए। हमारे स्कूलों और कालेजों में पढ़ने वाले लोगों की संख्या बहुत बढ़ गई है, और अब वहां बाकायदा कारखानों के समान 'शिफ्टों' में पढ़ाई हुआ करती है। स्वभावतः ऐसी व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं से कोई अधिक आशा करना बिल्कुल निरर्थक है।

और इन सबों के ऊपर विद्यार्थियों में जो आज बेचैनी है, उसका मूल कारण तो उनके अन्दर व्याप्त निराशा की भावना है। अपनी युवकोचित शक्ति एवं अपने माता-पिता की गाढ़ी कमाई के रुपयों को खर्च कर जब वे कालेजों से निकलते हैं तो उन्हें भुखमरी और बेरोजगारी का काला भविष्य एक ऐसे समाज के अन्तर्गत दिखलाई पड़ता है जिसमें अब भी गहरी आर्थिक विषमतायें मौजूद हैं। शिक्षा की वर्तमान प्रणाली इतनी अवास्तविक और इतनी 'किताबी' है कि उसके द्वारा शिक्षित व्यक्ति कदापि गौरवपूर्ण भविष्य की आशा नहीं रख सकता। एक तरफ तो राज्य को आज पंचवर्षीय योजना के विभिन्न विकास कार्यक्रमों के लिये बहुत अधिक शिक्षित टैक्नीशियनों की जरूरत है, और दूसरी तरफ ऐसे अंडरग्रैजुएटों और पोस्ट-ग्रैजुएटों की बढ़ती हुई फौज तैयार हो रही है जो अपनी डिग्री और अपने डिप्लोमा के अनुसार अलग-अलग दरवाजे खटखटा कर अपनी योग्यता के मुताबिक नौकरी के लिए बेतहाशा घूमा करती है। हमारे नौजवानों को आज जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है उसका स्थिति की वास्तविकता से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। कोरे आर्ट्स के अथवा कोरे साइंस के शिक्षाक्रमों के स्थान पर आज इस बात की बड़ी जरूरत है कि ऐसी संस्थाओं का गहरा विकास किया जाय जो विद्यार्थियों को यांत्रिक शिक्षा प्रदान कर उनको जीवन के विभिन्न निश्चित क्षेत्रों में काम करने योग्य बनावें। दूसरे शब्दों में हमारे शिक्षाक्रम में बहुत उग्र परिवर्तन करने की जरूरत है ताकि हमारी शिक्षा आर्थिक विकास की राष्ट्रीय योजना के साथ मेलजोल खा सके। महात्मा गांधी ने नवयुवक एवं नवयुवतियों को शिक्षा देने के लिये एक नई प्रणाली का, नई तालीम का सूत्रपात किया, जिसके द्वारा सामुदायिक कार्यों एवं उत्पादक धंधों द्वारा उनकी शिक्षा हो। हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि भारत सरकार ने और योजना आयोग ने नई तालीम के बुनियादी सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया है और और कहा है कि भविष्य में हमारी शिक्षा संस्थाओं में वही क्रम अपनाया जाना चाहिए। सेकन्ड्री शिक्षा आयोग ने भी इस बात की सिफारिश की है कि हमारे शिक्षालयों में स्थानीय स्थितियों के अनुसार धंधों पर केन्द्रित शिक्षाक्रम अपनाये

जाने चाहिये ।

हमें बड़ी आशा है कि प्राइमरी, सेकन्ड्री और यूनिवर्सिटी स्तरों की शिक्षा में तुरन्त ही गहरे परिवर्तन किये जायेंगे ताकि हमारे विद्यार्थी अपने अध्ययन में दिलोजान से लगें और इस प्रकार अपने जीवन के सब से अच्छे वर्षों में भावी जीवन के योग्य बन सकें । हमारा निश्चित मत है कि तुरन्त ही तमाम राज्य सरकारों को अपने प्रदेशों में शिक्षा सुधार करने के लिये नियमबद्ध योजना बनानी चाहिये ताकि अगले ही साल हमें निश्चित तब्दीलियां दिखलाई पड़ें । अपने शैक्षणिक ढांचे में जब तक हम ऐसी बुनियादी तब्दीलियां न कर दें तब तक अपीलों एवं धमकियों द्वारा विद्यार्थियों में वास्तविक अनुशासन स्थापित करना असम्भव ही होगा ।

इसके ये अर्थ कदापि नहीं होते कि हम हिंसा, आतिशजनी और गुंडागीरी को बर्दाश्त करें, भले ही वह किसी भी तरफ से आवे । विद्यार्थियों की वर्त्तमान बेचैनी का जो भी अर्थशास्त्र है, और उसके जो भी राजनीतिक कारण हैं, यह तो बिल्कुल निश्चित है कि अनुशासनविहीनता एवं हिंसात्मक कार्यवाहियों को हमें रोकना ही होगा । यदि हमें भारत में जनतंत्र की रक्षा करनी है तो उनको प्रभावशाली रूप से दबाना ही होगा । हमें इस बात की पूरी चेतना है कि इस देश में कुछ ऐसे राजनीतिक दल हैं जो अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भारत में अराजकता और हिंसा को बढ़ावा देना चाहते हैं । अपराध और अविवेक एवं बुद्धिभेद को बढ़ावा देने के लिए वह किसी भी प्रकार की स्थिति का लाभ उठाने में नहीं हिचकते । राज्य ऐसे कार्यों की ओर कदापि नर्मी के साथ नहीं देख सकता । आज तो अनशन और भूख हड़ताल मानो फैशन-सा हो गया है । आजकल की एक दूसरी राजनीतिक धड़ेबाजी 'मोर्चा' लगाना है । गांधीजी अनशन के अस्त्र को बहुत ही खास मौकों पर इस्तेमाल किया करते थे । गांधीजी अपने को उस अस्त्र का विशेषज्ञ कहते थे और वे दूसरों को अपनी आज्ञा लिये बिना इस अस्त्र का व्यवहार करने से मना करते थे । आज आचार्य विनोबा भावे, जो गांधीजी के सब से बड़े और सबसे उच्च शिष्य हैं, हम से कहते हैं कि छोटी छोटी बातों पर भूख हड़ताल करना बहुत ही गलत बात है । निश्चय ही ऐसे अनशन गांधीजी की भावना के विरुद्ध हैं । इसीलिए मैं देश के सब विद्यार्थियों से पुरजोर अपील करूंगा कि वे अनशन के पवित्र अस्त्र को मजाक न बनावें । राज्य को उनसे बड़ी अपेक्षा है । एक नहीं, अनेक अर्थों में वे नवीन एवं स्वतन्त्र भारत के निर्माता हैं । उनको चाहिए कि अपनी मातृभूमि के प्रति अपने गहरे दायित्वों को समझें और उसके अनुरूप ऊंचे उठें । हमें विश्वास है कि अपनी शिक्षा-प्रणाली में उग्र

परिवर्तन और देश की आर्थिक स्थिति में उन्नति होने के बाद भारत के नवयुवक निश्चय ही अपने वास्तविक रूप को प्राप्त करेंगे और हमारे इस प्राचीन देश का शांतिपूर्ण, जनतांत्रिक एवं न्यायपूर्ण आर्थिक आधार पर निर्माण करने के अपने ऐतिहासिक कार्य को पूरा करेंगे।

५ दिसम्बर, १९५३

शिक्षा में क्रांति

हम सब दुःख के साथ यह महसूस करते हैं कि राजनीतिक स्वतन्त्रता के बाद भी हिन्दुस्तान में हमारी शिक्षा पद्धति में कोई भी इन्कलाब और तब्दीलियां नहीं हुई हैं। जिस प्रकार एक नया राष्ट्र नया झंडा फहराता है, उसी प्रकार से नयी सरकार को नये किस्म की शिक्षा प्रणाली अपनानी चाहिये। अभाग्यवश हमारे शैक्षणिक ढांचे पर स्वराज्य की कोई भी छाप नहीं है और ऐसा लगता है कि वह आज भी उतना ही निर्जीव और 'एकेडेमिक' है जितना वह हमारी राजनीतिक गुलामी के दिनों में था। हमारे पाठ्यक्रम में और हमारे कालेजों में पढ़ाई जाने वाली टेक्स्ट बुकों में स्वतन्त्रता और राष्ट्रीय जागरण की हवा नहीं दिखाई पड़ती। हमारी शिक्षा संस्थाओं के विद्यार्थी इस बात को कम ही महसूस करते हैं कि उनको स्वतंत्र भारत के नागरिक होने का सौभाग्य प्राप्त है। निश्चय ही यह कोई सुख देने वाली बातें नहीं हैं।

लगभग १५ वर्ष पूर्व गांधीजी ने हमको शिक्षा की नयी पद्धति प्रदान की थी। उनके द्वारा बताई इस पद्धति में दक्षिण अफ्रीका के आश्रमों में, और भारत के उनके आश्रमों में भी प्राप्त उनके अनुभवों का समावेश है। वह चाहते थे कि हम बच्चों को लाभप्रद और उत्पादक कार्यवाहियों के जरिये से शिक्षा दें। उनका मत था कि इतिहास, भूगोल, गणित, नागरिक शास्त्र, विज्ञान और अर्थशास्त्र जैसे विषयों की शिक्षा को कुछ बुनियादी दस्तकारियों जैसे कातना, बुनना, बढ़ई का काम, लोहार का काम, खेती का काम, बागबानी इत्यादि से सम्बन्धित करना चाहिये। इस प्रकार हमारे स्कूलों के बच्चे "कार्य द्वारा शिक्षा" और "शिक्षा पाते हुए धनोपार्जन" कर सकते हैं। इस प्रकार की नयी बुनियादी तालीम मुल्क के सामने कई वर्षों से है, और भारत के कई हिस्सों में अलग २ किस्म के बुनियादी शिक्षालय चलाये भी जा रहे हैं। योजना कमीशन तथा भारत सरकार ने भी प्राइमरी स्कूलों के लिये बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त को मान लिया है। पर यह स्पष्ट नहीं हुआ कि किस प्रकार सरकार वर्तमान स्कूलों को बुनियादी शिक्षा प्रणाली के स्कूलों में बदलने का विचार कर रही है। पर एक बात तो हम सबों को स्पष्ट है ही कि यह अब उचित नहीं रहा कि हम प्रयोगात्मक आधार पर कहीं-कहीं कुछ बेसिक स्कूलों को खोल दें और आमतौर से अपनी शिक्षा संस्थाओं में वही पुरानी पिटी हुई शिक्षा प्रणाली को चलने दें। सरकार नये शिक्षाक्रम को चलाने के लिये उत्सुक है तो उसको चाहिये कि देश की

सभी शिक्षा संस्थाओं में बेसिक शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ करवा दे। पुरानी और नये प्रकार की शिक्षा प्रणालियों को एक साथ, एक दूसरे के बगल-बगल चलते रहने का सिलसिला ज्यादा दिन नहीं चल सकता। यदि सरकार इस नयी, बुनियादी तालीम के सिद्धान्त को पूर्णरूपेण स्वीकार करने को तैयार नहीं है तो उसको स्पष्ट रूप से कह देना चाहिये। अगर इस समय हमारी राज्य सरकारें ही देश के स्कूलों में थोड़े समय शिक्षा और थोड़े समय काम का सिलसिला शुरू कर दें तो उससे हमको संतोष हो जायगा। आजकल की जो शिक्षा संस्थाएं हैं वह हद से हद सूचना की केन्द्र हैं, शिक्षा की केन्द्र नहीं। उनका जमाना रहा है पर अब उनका जमाना नहीं रहना चाहिये।

हाल में मद्रास सरकार ने अपने प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित स्कूलों के लिये विशेष तौर से कुछ उग्र परिवर्तन किया है। एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा गया है कि "यह वांछनीय नहीं है कि शिक्षा पाने के बाद विद्यार्थीगण शारीरिक और दिमागी तौर से अपनी और देश की भलाई के लिये आवश्यक उत्पादक कार्यों के अयोग्य हो जाएं।" अत: वहां स्कूल का वक्त घटा कर ३ घंटा कर दिया गया है, यद्यपि यह भी कहा गया है कि जरूरत पड़ने पर सप्ताह में ६ दिन तक स्कूल खुले रहा करेंगे। इस योजना के अनुसार स्कूल के बच्चों को आधा दिन फुरसत रहेगी, जिसमें वह अपने घरवालों के साथ घरेलू काम-धंधों में हाथ बटा सकेंगे। यह क्रम विशेष धन्धों में लगे परिवर्तनों के सभी बच्चों के लिये जरूरी है, अर्थात् उनके लिये जो या तो खेतिहर मजदूरी करते हैं या स्वयं भूमि के मालिक काश्तकार हैं या कुम्हार, बढ़ई, लुहार जैसे दस्तकार हैं। हम इस नये कदम के लिये मद्रास सरकार को बधाई देना चाहते हैं। यह सही है कि यह क्रम बुनियादी शिक्षा प्रणाली से बहुत फर्क किस्म का है। पर हम को इस बात से दु:ख है कि मद्रास की शिक्षा प्रणाली में यह तब्दीली फिलहाल गांवों में स्थित लोअर एलीमेन्टरी स्कूलों में ही लागू होगी, और नगरपालिकाओं या बड़ी २ पंचायतों के दायरों में रहने वाले स्कूलों में नहीं लागू की जायगी। हम मद्रास सरकार से अनुरोध करेंगे कि वह नयी योजना को केवल ग्रामीण क्षेत्रों तक ही सीमित न रखे, उसको शहरी क्षेत्रों के स्कूलों में भी लगाए, हालांकि यह सही है कि शहर में रहने वाले बच्चों के लिये काम का ढंग देहाती बच्चों के काम के ढंग से कुछ अलग होगा। शहरी बच्चे आधा दिन ऐसी दस्तकारियों और ग्रामोद्योगों की शिक्षा पाने में खर्च कर सकते हैं जो बाद के जीवन में उनकी सहायक हों। हम यह भी आशा करते हैं कि शिक्षा प्रणाली में यह तब्दीलियां धीरे २ मद्रास के मिडिल और हाई स्कूलों में भी कर दी जायंगी। हम यह भी समझते हैं कि वर्तमान स्कूलों में इस प्रकार के परिवर्तनों के फलस्वरूप कुछ दिनों के बाद

राज्य की सभी शिक्षा संस्थाओं में बुनियादी तालीम लगाई जा सकेगी।

हमारा निश्चित मत है कि मौजूदा स्कूलों में जब तक गहरी तब्दीलियां नहीं की जातीं और उनकी दशा नहीं बदली जाती तब तक उनके विकास के विषय में योजना बनाना बड़ा खतरनाक सिद्ध हो सकता है। आजकल स्कूलों और कालेजों से हमारे लड़के और लड़कियां जब पढ़कर निकलते हैं तो वह जनता में बड़ा असंतोष और बड़ी पस्तहिम्मती फैलाते हैं और बेरोजगारों की तादाद को बढ़ाते हैं। बे-रोजगार नौजवानों की यह फौज देश में जनतांत्रिक हुकूमत के निर्विघ्न चलने के रास्ते में बड़ा खतरा पेश करती है। सच तो यह है कि शिक्षित बेरोजगारों का मसला आज हमारे देश में बहुत भयावह सीमाओं तक पहुंच चुका है और इसलिये जरूरी है कि सरकार और जनता गम्भीरता के साथ इसे हल करने की कोशिश करे। यह तभी सम्भव है जब हमारे स्कूल और कालेज आज की तरह किताबी ज्ञान के केन्द्र न रहकर वास्तव में उत्पादक कार्यवाहियों के क्रियाशील केन्द्र हो जायं। यह सही है कि ऐसी शिक्षा संस्थाओं द्वारा तैयार किये गये सामानों के लिये सरकार को बाजार ढूंढ़ना होगा। उचित तो यही है कि राज्य सरकारें अपने विभिन्न विभागों के इस्तेमाल के लिये ऐसे गृहोद्योगों और स्कूलों द्वारा तैयार किये गये सामानों का ही इस्तेमाल करें। इसके साथ हमको जनता में भी स्वदेशी की भावना जागृत करनी चाहिये ताकि वह गृहोद्योगों, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के सामानों का व्यवहार शुरू करे। सारांश में, इस क्षेत्र में स्थायी सफलता पाने के लिये यह वांछनीय है कि हम अपने शैक्षणिक और औद्योगिक क्षेत्रों में उग्र परिवर्तन करें। अगर हम अपने स्कूलों में बुनियादी तालीम शुरू कर दें पर उसी के साथ छोटे पैमाने के उद्योगों और कुटीर उद्योगों द्वारा विकेन्द्रित उत्पादन के प्रति निश्चित नीति न अपनाएं, तो उसका नतीजा यह होगा कि उन स्कूलों द्वारा तैयार किये गये सामान और उन स्कूलों में अपने नौजवानों को दी जाने वाली शिक्षा बेकार हो जायगी। इसके विपरीत अगर हम अपने औद्योगिक ढांचे को बदलें पर उसी के साथ हम अपने शैक्षणिक ढांचे में परिवर्तन न करें तो उसका नतीजा यह होगा कि अपने उद्योगों को निपुणता से चलाने के लिये शिक्षित व्यक्तियों की हमें गहरी कमी महसूस होगी। अतः शैक्षणिक एवं औद्योगिक, दोनों क्षेत्रों में सुधार करना राष्ट्रीय योजना का अविभाज्य अंग समझना चाहिये।

यहीं पर हम शिक्षा के एक और पहलू की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाना चाहेंगे। आज हमारे स्कूलों और कालेजों में भारतीयत्व का अभाव-सा दिखाई पड़ता है। जो हमारा पाठ्यक्रम है, जो हमारी टेक्स्ट बुकें हैं, और इन शिक्षा संस्थाओं में जो वायुमंडल रहता है, उससे हमारे नौजवान लड़के और लड़कियों में यह भावना

पैदा नहीं होती कि वह भारत की अमूल्य सांस्कृतिक निधि की विरासत पान वाले भारतीय नागरिक हैं। सेक्यूलर शिक्षा के नाम पर हमारे स्कूल इतने बदरंगे और अभारतीय हो गये हैं कि उनके विद्यार्थियों को स्वतन्त्र भारत के नागरिक होने का जैसे घमन्ड ही नहीं होता। हम यह नहीं कहते कि हम अपने नौजवानों में संकरी राष्ट्रीयता के विचारों को भरें। सच तो यह है कि हमें अपने विद्यार्थियों के दृष्टिकोण को बहुत विस्तृत बनाना है और उनमें संसार के नागिरक होने की भावना पैदा करनी है। पर हम स्वस्थ राष्ट्रीयता और वसुधैव कुटुम्बकम् वाले सिद्धान्त में कोई ऐसा निहित संघर्ष नहीं देखते। हम बड़ी आशा करते हैं कि हमारी राज्य सरकारें तथा निजी व्यक्तिगत शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्धक भी शीघ्र ही अपने स्कूलों का भारतीयकरण करने के लिये जल्दी कदम उठायगे और महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी तालीम के आधार पर उन स्कूलों को उत्पादक कार्यवाहियों का जीवित केन्द्र बना देंगे।

५ जुलाई, १९५३

भूमिदान का अर्थशास्त्र

गत २७ मार्च को नयी दिल्ली में संसद के सदस्यों के एक सम्मेलन में भूमिदान यज्ञ पर एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जिसमें आचार्य विनोबा भावे के इस आन्दोलन की बड़ी प्रशंसा की गई और कहा गया कि इससे भारत के सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण में एक नया अध्याय प्रारंभ होता है। सम्मेलन ने सारी जनता से, और विशेष रूप से संसद के एवं प्रादेशिक विधान सभाओं के सदस्यों से अपील की कि वे इस महान कार्य का क्रियात्मक रूप मे समर्थन करें और इसे अपना पूरा सहयोग दें। उनसे यह भी कहा गया कि वे १९५४ के मार्च के महीने तक विनोबाजी के २५ लाख एकड़ भूमि के अपने ध्येय को प्राप्त करने में पूरी मदद करें। अपने उद्घाटन भाषण में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि वे भूमिदान आन्दोलन को बड़ा ही महत्व देते हैं, जो देश की भूमि वितरण संबंधी समस्या को हल करने का बिल्कुल नया तरीका है। उन्होंने यह भी बताया कि यह आन्दोलन भारत में अहिंसक एवं शांतिपूर्ण तरीकों से क्रान्ति करवाने का एक ढंग है, जिससे देश में एक नया ही वातावरण पैदा हो रहा है। "यह आन्दोलन भले ही हमारे अर्थशास्त्रीय पंडितों की समझ में न आये पर निश्चय ही यह हमारी जनता के मस्तिष्क और हृदय को छूता है।" सम्मेलन के अध्यक्ष डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा कि विनोबाजी "झगड़े के नियम" के स्थान पर "प्रेम के नियम" का प्रचार कर रहे हैं, कारण वे शक्ति और दबाव की बजाय लोगों को समझाकर काम करवाने में विश्वास रखते हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि भूमिदान-यज्ञ द्वारा संसार को यह पता लग जायेगा कि "गहरी सामाजिक एवं आर्थिक तब्दीलियां अधिनायकशाही तरीकों या सरकारों द्वारा नहीं, वरन् जनतांत्रिक तरीकों द्वारा अधिक सफलतापूर्वक लायी जा सकती हैं।"

आचार्य विनोबा भावे ने कहा है कि १९५७ के अन्त तक वे पांच करोड़ भूमि एकत्रित करेंगे। स्मरण रहे कि सन् १९५७ में ही, सन् १८५७ में हमारा जो स्वातन्त्र्य संग्राम चला था, उसके १०० वर्ष पूरे होंगे और उसी वर्ष ही हमको स्वतन्त्र भारत का द्वितीय आम चुनाव करना होगा। पांच करोड़ एकड़ भारत की लगभग कुल काबिल-काश्त भूमि का करीब छटवां हिस्सा है। देश में कुल भूमिहीन मजदूरों की संख्या भी लगभग पांच करोड़ ही है। विनोबाजी को इस बात से संतोष हो जायेगा यदि प्रत्येक खान्दान का प्रत्येक व्यक्ति औसतन एक एकड़ भूमि प्राप्त

कर ले, यानी यदि हम औसत घर को पांच व्यक्तियों का मान लें तो प्रत्येक घर को पांच एकड़ भूमि काश्त के वास्ते मिल जाये। यह स्वीकार कर कि एक घर में पांच व्यक्ति होते हैं, विनोबा जी यह अपेक्षा करते हैं कि प्रत्येक भूमि का मालिक "दरिद्र-नारायण" को अपने घर का छटवां प्राणी मानकर अपनी कुल जमीन का छटवां हिस्सा देना स्वीकार कर लें। अतः आचार्य विनोबाजी के अनुसार औसत लाभकर आराजी के दुगने या चौगुने रूप में आराजियों का उच्चतम स्तर निर्धारित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके अनुसार हिन्दुस्तान में पांच एकड़ भूमि से कम किसी के पास न रहनी चाहिए। भोजन के ही समान भूमि भी जिन्दगी की एक बुनियादी जरूरत है और हमारे देश में किसी को अपने जीवन-निर्वाह से अधिक भूमि कदापि न रखने दी जाये।

सम्मेलन में भाषण देते हुए पंडित नेहरू ने भूमिदान आन्दोलन के प्रति सरकार के दायित्व के संबंध में कुछ बड़ी मतलबभरी महत्वपूर्ण बातें कहीं। उन्होंने सही ही कहा कि "भूदान-यज्ञ के फलस्वरूप सरकार का दायित्व लेशमात्र भी कम नहीं हुआ है।" आचार्य विनोबा को कितनी भी सफलता मिलती जाये, वह सफलता कानून का स्थान नहीं ले सकती। इसलिए ही पंडितजी ने कहा है कि "केन्द्रीय सरकार एवं प्रादेशिक सरकारों की भूमि प्रश्न को हल करने के प्रति जिम्मेदारी बदस्तूर कायम रहती है और उसे उन्हें मुकम्मिल तौर से ओढ़ना ही होगा।" राष्ट्रीय आयोजन कमीशन ने सिफारिश की है कि "किसी भी व्यक्ति के पास कितनी अधिक से अधिक भूमि रहे इसे निर्धारित कर देना चाहिए।" यह सीमा प्रत्येक राज्य अपने प्रदेश की भूमि स्थितियों को और उसकी वर्तमान समस्याओं को सम्मुख रख-कर निर्णय करे। आयोजन कमीशन ने यह प्रस्ताव किया है कि १९५३ में वह देश की आराजियों के संबंध में एक गणना करवायेगा। इस गणना के फलस्वरूप तमाम प्रादेशिक राज्यों को इस संबंध में आवश्यक निर्णय के लिए जरूरी आंकड़े मिल जायेंगे। राष्ट्रीय आयोजन कमीशन ने यह भी कहा है कि भूमि सुधारों के संबंध में एक केन्द्रीय संगठन स्थापित किया जाये, तो विभिन्न राज्यों में होने वाले सुधारों का अध्ययन एवं अन्वेषण करता रहे और उसके "ज्ञान तथा अनुभव को एक स्थान पर केन्द्रित करे।" हम केन्द्रीय सरकार से यह जानना चाहेंगे कि आयोजन कमीशन की इन सिफारिशों को अमली जामा पहनाने के लिए क्या कदम उठाया गया है? जहां तक हमको मालूम है इस विषय में ऐसी भूमि गणना के लिए अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं किया गया और इस वर्ष के तीन महीने पूरे हो चुके हैं। हमारी राय है कि भारत सरकार को भूमि गणना आयोग की स्थापना करने में कोई भी देरी नहीं करनी चाहिए ताकि देश के अलग अलग हिस्सों में अलग-अलग माप की आराजियां और

उनकी संख्या के संबंध में आवश्यक जानकारी प्राप्त हो जाय। प्रस्तावित भूमि संबंधी केन्द्रीय संगठन को विभिन्न राज्यों में भूमि सुधारों की प्रगति का पता लगाना चाहिए और इस प्रकार यह जांचना चाहिए कि वे पंचवर्षीय योजना में आयोजन कमीशन द्वारा निश्चित सिफारिशों से कहां तक कम पड़ते हैं। निश्चय ही कुछ राज्य अन्य राज्यों से कहीं आगे बढ़ गये हैं और बड़े ही प्रगतिशील किस्म के गहरे भूमि सुधार उन्होंने लागू कर दिये हैं। बाकी राज्य अभी भी पीछे पड़े हुए हैं और उनको अभी बहुत आगे बढ़ना है। अतः यह आवश्यक है कि उग्र भूमिसुधार को लागू करने के लिए उनके उत्साह को बढ़ाया जाये ताकि शीघ्रातिशीघ्र सब ही सामंती अवशेषों का खात्मा हो जाये।

हम भारत सरकार और तमाम प्रादेशिक सरकारों का ध्यान भूमिसुधार को शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने की नितांत आवश्यकता की ओर दिलाना चाहेंगे। सच तो यह है कि इस मसले की ओर उनका सबसे पहले और सबसे अधिक ध्यान जाना चाहिए। पंचवर्षीय योजना द्वारा एक भूमि नीति का निर्धारित कर देना ही काफी नहीं है। इससे भी ज्यादा जरूरी यह है कि बिना वक्त को जरा भी खराब किये उसे कार्यान्वित किया जाये। "भूमि की भूख" का जो सिलसिला हम हिन्दुस्तान में देख रहे हैं वह हमारे देश की ही कोई विशेषता नहीं है। वैसी भूख तो संसार के सभी हिस्सों में दिखाई पड़ती है। कारण, सब ही मनुष्यों में यह स्वाभाविक प्रेरणा होती है कि वे "भूमि के बेटे" बने रहें। मनुष्य की इस भूमि की भूख के महत्व को न समझना अथवा उसको दबाने का प्रयास करना निश्चय ही खतरों से भरा हुआ है और घातक भी सिद्ध हो सकता है। अतः हम यह सुझाव देंगे कि भारत सरकार आज से तीन महीने के अन्दर-अन्दर प्रत्येक राज्य से भूमि सुधार संबंधी आवश्यक जानकारी और आंकड़े प्राप्त करने के लिए तत्काल कदम उठाये। प्रथम पंचवर्षीय योजना में जो भूमि नीति निर्धारित की गयी है वह कोई बहुत उग्र नीति नहीं है और आसानी से अमल में लायी जा सकती है। सच तो यह है कि इस साल के अन्दर अन्दर इस नीति को अपने-अपने राज्यों में कार्यान्वित कर देने में कोई भी दिक्कत किसी राज्य सरकार के सामने नहीं होनी चाहिए। हम कहना चाहेंगे कि भूमि सुधारों को जल्द से जल्द पूरा करने का विशेष महत्व है और हम चाहेंगे कि पंचवर्षीय योजना पूरी करते समय इसे बराबर ध्यान में रखा जाये। आज भी बड़ी तेजी से चलने वाली दुनिया में धीरे-धीरे बढ़ने की अर्थात् "आहिस्ता-आहिस्ता तेजी करने की" नीति गहरे खतरों से भरी पड़ी है। हां, बहुत तेज चलने में भी कुछ खतरा है, पर आवश्यकतानुसार तेज न चलने का खतरा निश्चय ही घातक है।

आचार्य विनोबाजी का भूमिदान आन्दोलन भारत में शांतिपूर्ण एवं जनतांत्रिक तरीकों द्वारा गहरे भूमि-सुधारों को लागू करने के लिए उचित वायुमंडल पैदा करने में बहुत ही सहायक हुआ है और होगा। इस वातावरण का फायदा हमारी सरकारों को पूरी तौर से उठाना चाहिए। भूमिदान यज्ञ का मौखिक समर्थन और हमदर्दी मात्र से काम नहीं चलेगा। हम चाहेंगे कि हमारी भावी सन्तानों को दुःख के साथ यह कहने का अवसर न प्राप्त हो कि जहां विनोबा जैसे गांधीवादी साधु अपने हड्डीले शरीर को लिए हुए, हजारों मील भारत के ग्रामों में एक कोने से दूसरे कोने तक घूमे और भूमिदान की याचना करते रहे वहीं तात्कालीन सरकार ने इस सुनहरे अवसर का उपयोग नहीं किया और दृढ़ प्रतिज्ञा एवं तेजी के साथ भूमि-सुधार नहीं लागू किये।

५ अप्रैल, १९५३

हमारी दारूबंदी नीति

हाल में ही बम्बई सरकार ने बम्बई राज्य में दारूबन्दी की तृतीय वर्षगांठ मनाई। इस अवसर पर पंडित नेहरू ने अपने ओजस्वी भाषण में बताया कि इस प्रकार की समाज सुधार की योजना में "आर्थिक लाभ अथवा हानि को एक निम्न स्थान प्राप्त है।" उन्होंने कहा : "इसमें बिल्कुल संदेह नहीं कि थोड़े या बहुत समय में दारूबन्दी नीति से आम जनता को लाभ होता है।" श्री राजगोपालाचारी ने भी एक संदेश भेजा जिसमें उन्होंने कहा : "दूसरों को नशीली वस्तुओं के प्रयोग के लिए प्रोत्साहन देना अनैतिक है। और यही हमसे करने के लिए कहा जाता है जब लोग मजदूरों के लिए दारू की दुकानें खोलने के लिए कहते हैं । आय-हानि की चर्चा, शब्दों का हेर-फेर मात्र है। दूसरे शब्दों में, जो कुछ हम मजदूरों को लुभाकर और उनकी पत्नियों और बच्चों को धोखा देकर प्राप्त कर सकते थे उसकी प्राप्ति हम नहीं करते। यह केवल तर्क नहीं है बल्कि ईश्वरीय सत्य है।" बम्बई में दारूबन्दी सप्ताह का मनाना हमारे देश की दारूबन्दी प्रगति में एक विशेष स्थान रखता है। हम इस अवसर पर बम्बई सरकार को बधाई देते हैं कि उन्होंने कड़े विरोध और नुक्ताचीनी की चिन्ता न करते हुए दारू-पान रूपी पाप के विरुद्ध एक साहसी और सतत योजना चला रखी है।

खेद है कि हमारे देश में बहुत सारे राजनैतिक तथा सामाजिक दलों के विचार-पूर्ण नेता भी दारूबन्दी नीति को अभी तक पूरी तरह समझने में असमर्थ हैं। शराबबन्दी को अभी तक गांधीजी की धुन मात्र समझा जाता है और कहा जाता है कि इससे हमारी राष्ट्रीय आय में लगभग ५० करोड़ रुपये की हानि होती है। राज्य-सभा और लोक-सभा के बहुत सारे सदस्य कांग्रेस सरकार की इस 'दुश्चिन्तित' और 'खतरनाक' नीति तथा योजना को बुरा-भला कहने में कभी नहीं थकते। सम्भवतः बहुत सारे लोग इस बात को अनुभव नहीं करते कि भारत का संविधान स्पष्ट शब्दों में इस नीति को अपनाने के लिए सरकार को कहता है। विधान की धारा ४७ में कहा गया है कि "सरकार इस बात का प्रयत्न करेगी कि नशीली पेय-वस्तुओं और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक दवाइयों का बिल्कुल निषेध किया जाए। केवल दवाई के तौर पर ऐसी वस्तुएं प्रयुक्त की जा सकती हैं।" अतः भारत में दारूबन्दी की नीति को समाप्त करने की वार्ता निश्चित ही विधान-विरुद्ध है। विभिन्न राज्यों की आर्थिक अथवा अन्य विशेष परिस्थितियों को देखते

हुए दारूबन्दी की योजना को कार्यान्वित करने तथा उसकी प्रगति के विषय में महत्वपूर्ण कारण उपस्थित किये जा सकते हैं। परन्तु दारूनिषेध नीति का ही विरोध करना और उन राज्य-सरकारों की भर्त्सना करना जिन्होंने कि बड़े साहस और दृढ़ता से इसे अपनाया है, देश-द्रोह ही नहीं, बल्कि उस पवित्र संविधान के प्रति पाप है जिसे उस देश ने अपनाया है जिसे समस्त विश्व में गांधीजी का देश कहा जाता है।

आय-हानि की दलील वास्तव में गलत और शरारतभरी है। अंग्रेज सरकार कर से होने वाली आय को शिक्षा के लिए लगाने पर सदा अभिमान करती थी। परन्तु इससे बढ़कर मूर्खतापूर्ण और शिक्षा के लिए हानिकारक दूसरी कोई चीज नहीं हो सकती थी क्योंकि पहले तो दीन-जनों को शराब-पान द्वारा गिराया जाता था और फिर उस कलंकित रुपये से उनके बच्चों को शिक्षित बनाने का ढोंग रचा जाता था। कोई भी सरकार जो विकास व्यय के लिए दारूपान से इकट्ठी हुई आय पर निर्भर रहती है वह कभी भी 'कल्याणकारी राज्य' स्थापित नहीं कर सकती, ऐसी सरकार उस बतख को जो सोने का अंडा देती हो कभी भी नष्ट करना पसन्द नहीं करेगा, अपितु वह अधिक आय के लिए दारू पान का अधिक प्रचार करेगी। जनता का कल्याण और शराबपान की आदत को उत्साहित करना दो परस्पर विपरीत बातें हैं। इसके अतिरिक्त हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दारू-बन्दी नीति जनता के लिए बहुत लाभदायक है और जो आय की हानि प्रतीत होती है वह वास्तव में जनता की भलाई है। दारूबन्दी के लाभों का निर्णय करते समय यह स्वाभाविक ही है कि गैरकानूनी तौर पर शराब बनाने और उसे इधर उधर भेजने की बुराइयों को बढ़ा-चढ़ा कर कहा जाए। वर्धा की जन-संस्थाओं की कुछ जांचों से स्पष्ट रूप में यह परिणाम निकलता है कि शराबबन्दी से जन-साधारण को बहुत लाभ हुआ है। इस दशा में क्या यह बुद्धिमत्ता है कि अस्पष्ट आय-प्राप्ति के लाभार्थ जनता की स्पष्ट भलाई को न्यौछावर कर दिया जाए ? लोक-सम्बन्धी आर्थिक व्यवस्था के प्रत्येक विद्यार्थी को अच्छी प्रकार विदित है कि शराब पर लगाए गए कर का भार, विशेषकर भारत जैसे देश में मुख्यतः दीन-जनों पर पड़ता है। अतः इस स्रोत से प्राप्त की हुई आय और भी बुरी है। यह देने वाले के लिए शाप है और इकट्ठा करने वाले के लिए भी निन्दित है।

कुछ लेखकों का यह भी कहना है कि सम्पूर्ण रूप से दारूबन्दी न करके यह अधिक ठीक होगा कि राशन और परमिटों के द्वारा अल्पपान के लिए आज्ञा दे दी जाय। परन्तु यह ऊपर से सुन्दर लगने वाली दलील मनुष्य स्वभाव के बारे में अज्ञान

की परिचायक है। चीन में बुद्धिमत्ता से भरी एक लोकोक्ति प्रचलित है जिसको कि हमें स्मरण रखना चाहिए : "पहले आदमी शराब को पीता है, फिर शराब शराब को पीने लगती है अर्थात् शराब-पान की आदत बहुत बढ़ जाती है। अन्त में शराब मनुष्य को पीने लग जाती है अर्थात् उसे समाप्त कर देती है।" वास्तव में अल्प-पान एक मिथ्या है। यह शराब पर कर देने के लिए अधिक लोगों को फंसाने का एक नीच ढंग है। शराब पीना एक बड़ा भारी पाप है और पाप के साथ किसी भी प्रकार का मेल करना, न अर्थशास्त्र संगत ही है और न राजनीति ही है, किन्तु एक नग्न दुराचार है।

यह भी कहा जाता है कि शराबबन्दी अमेरिका की तरह भारत में भी अवश्य असफल हो जायगी और शराबबन्दी न करने से कानून के विरुद्ध शराब निकालनी स्वयं बन्द हो जाएगी। यह कथन भी वास्तविकता से दूर है। डाक्टर जी० बी० कटन ने अपनी पुस्तक "क्या दारूबन्दी पुनः लागू होनी चाहिए ?" में कहा है कि अमेरिका में शराबबन्दी के समय गृह-निर्माण का कार्य, बचाए हुए धन को धरोहर रखने का कार्य, जान-बीमा में धन लगाने का कार्य तथा दूध, फल और वनस्पति-रस का प्रयोग बहुत बढ़ गया था। वहां की केन्द्रीय सरकार के आवेदनपत्रों से पता चलता है कि अमेरिका में ज्योंही शराबबन्दी को समाप्त किया गया त्यों ही "सब नशीली वस्तुओं की खपत असाधारण रूप से २३५ प्रतिशत बढ़ गई।" इसके अतिरिक्त शराब-पान की गिरफ्तारियां लगभग दुगनी हो गईं, बैंकों में जमा किया हुआ धन शीघ्रता से कम हो गया और गृह निर्माण का कार्य बहुत घट गया। इन बहुत सारी बातों से केवल एक ही निष्कर्ष निकलता है कि अमेरिका में भी शराबबन्दी एक बहुत अच्छी चीज सिद्ध हुई थी। अमेरिका में शराबबन्दी को छोड़ने का इतिहास कुछ विशेष लोगों की भलाई के लिए जन-साधारण की भलाई को न्यौछावर करने की एक मलिन कथा मात्र है। यदि अमेरिका में दारूबन्दी नीति असफल भी रही तो कोई कारण नहीं कि भारत में यह असफल रहेगी। प्रोफेसर शरफन बर्ग ने जो कि अमेरिका की संयम सभा के प्रबन्धक मंत्री हैं हाल ही में बम्बई में एक प्रेस-कांफ्रेंस के सम्मुख बताया : "भारत की स्थिति ऐसी है कि यहां धार्मिक विचार बहुत गहन है, सांस्कृतिक और दार्शनिक परम्परा परिपूर्ण है, दृष्टिकोण आदर्शवादी तथा यथार्थवादी हैं और लोग साधारणतया नशीली वस्तुओं के बनाने, बेचने, बाहर से मंगाने और प्रयोग करने के बारे में एक ही प्रकार की राय रखते हैं। अतः भारत अपनी इस सुदृढ़ अवस्था के कारण समस्त संसार के सामने संपूर्ण राष्ट्र में शराब-बन्दी की सफलता का उदाहरण रख सकता है।"

परन्तु हमें ध्यान रखना चाहिए कि संपूर्ण रूप से शराबबन्दी की नीति केवल कानून बनाने और सिपाही शक्ति से सफल नहीं हो सकती। इस प्रकार का सामाजिक और चारित्र्य सुधार सर्वप्रिय शिक्षा और गैर-सरकारी सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकता। यही कारण है कि गांधीजी शराबबन्दी को अपने रचनात्मक कार्यक्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान देते थे। अतः अन्त में शराबबन्दी की स्थायी सफलता समाज सेवकों की श्रद्धा और भरसक प्रयत्न पर निर्भर होगी। इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं कि शराबबन्दी एक ठोस और उदार नीति है और यह हम सबका कर्तव्य है कि इसे हर प्रकार से सफल बनाया जाए। यह एक वैधानिक बन्धन है जिसे कि हमें प्रसन्नता और शान्तचित्त से स्वयं ही निभाना चाहिए। यदि भारत में दारू-बन्दी असफल रही तो मनुष्य की भली आशाएं भी इसके साथ ही समाप्त हो जाएंगी।

५ मई, १९५३

न्याय-व्यवस्था में सुधार का अर्थशास्त्र

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने हाल के आगरा अधिवेशन में अपने सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम सम्बन्धी प्रस्ताव में कहा था कि "वर्तमान कानन व्यवस्था सरल बनानी चाहिए और वह कम खर्चीली और शीघ्र कार्य करने वाली भी होनी चाहिए, ताकि कल्याणकारी राज्य की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों के वह अनुरूप हो सके।" प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि "वर्तमान न्याय-व्यवस्था खर्चीली है और उसमें देर भी लगती है।" जिस प्रकार हमें विदेशी शासन से सरकारी आई. सी. एस. इत्यादि नौकरियों का "लौह ढांचा" प्राप्त हुआ, उसी प्रकार देश का कानूनी ढांचा भी हमें विदेशी शासकों से ही विरासत में मिला। यह न्याय-ढांचा अंग्रेजी जमाने में तो बुरा था ही, पर स्वतन्त्रता के बाद वह और भी खराब हो गया है और मंगल राज्य की जिम्मेदारियों को ओढ़ने के वास्ते वह नामाकूल है। अतः यह उचित ही है कि कांग्रेस ने देश की कानूनी अदालतों के ढांचे में तब्दीली लाने के लिए इस मसले को गंभीरता के साथ उठाया है।

संयोग की बात है कि इसी वक्त ब्रिटेन की सरकार भी अपने देश में अपनी कानूनी व्यवस्था के सुधार करने की समस्या पर गौर कर रही है। अप्रैल १९४७ में तत्काल ब्रिटिश हकूमत ने सर रेमन्ड एवरशेड की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी जिसको कहा गया कि वह "उच्चतम न्यायालय की कार्य-प्रणाली और कार्य-विधि की जांच करे और यह पता लगाये कि मुकदमों के खर्चे को कम करने के लिए और अदालत के कार्य को अधिक कुशलता और तेजी से पूरा करने के लिए क्या क्या सुधार किये जाने चाहिएं।" लगभग तीन सप्ताह हुए एवरशेड कमेटी की रिपोर्ट लंडन में प्रकाशित हुई है और गत १४ जुलाई के लंडन के "टाइम्स" अखबार में उस पर एक सुन्दर सम्पादकीय टिप्पणी भी है। हम बड़ी उत्सुकता के साथ इस रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रहे हैं और प्राप्त होने पर हम उसका पूरा अध्ययन करेंगे। पर अब भी उसका जो संक्षिप्त विवरण प्राप्त हुआ है, वह भारत में न्याय-व्यवस्था में सुधार करने की दिशा में हमें कुछ मूल्यवान सुझाव देता है। हमें यह पढ़ कर बड़ा कौतूहल पैदा हुआ कि कमेटी ने "२१ उपसमितियों की ४०० बैठकें कीं और पूरी कमेटी की ४० बैठकें तथा तीन अन्तरिम रिपोर्टें सरकार को दीं।" इससे हम लोगों को इस बात का कुछ अंदाज लग जाता है कि अपने देश में दृढ़ निश्चय और मजबूत इरादे के साथ यदि

हम न्याय-व्यवस्था में सुधार करना चाहेंगे तो उसके लिए हमें कितनी कठिन मेहनत करनी होगी।

एवरशेड कमेटी की रिपोर्ट में कहा है कि मुकदमे के खर्चे को कम करने के लिए हमें बिल्कुल "नया नजरिया" अपनाना होगा। सुझाव दिया गया है कि सबों को, न्यायाधीशों को भी, खर्चे की समस्या की ओर जागरूक रहना चाहिए। यह भी प्रस्ताव किया गया है कि "कुछ उचित मामलों में मुद्दई द्वारा हलफनामे में अपने इस्तगासे का जिक्र कर देना मात्र ही इस बात के लिए काफी होना चाहिए कि उस मामले का मुकदमा बिना वकीली बहसों के किया जा सके।" मुद्दालेह के लिए भी एक हलफनामे के द्वारा अपनी बचत का जिक्र करने का मार्ग खुला रहना चाहिए और तब उन सूचनाओं पर अपने को आधारित कर उच्चतम न्यायालय के एक उच्च अधिकारी को यह तय करना चाहिए कि बिना वकीली बहसों के मामला चलाया जा सकता है या नहीं। यह सुझाव भी रखा गया है कि "इसी प्रकार प्रारंभिक सम्मनों का विस्तार बढ़ाया जाए ताकि इसमें आम तौर पर ऐसे मुकदमे आ जाएं जिनमें सचाई पर आधारित कोई असली झगड़ा नहीं है।" समिति को आशा है कि 'बार' के सदस्य और कानूनी सलाहकार, "आदत, होशियारी या इन दोनों के कारण पुराने पिटे रास्ते का अनुकरण करने की" कोशिश नहीं करेंगे वरन् अपनी "सद्-बुद्धि और सहायता" से नई योजना को सफल बनाएंगे। कानूनी तरीके को आसान बनाने के लिए रिपोर्ट में बहुत सारी सिफारिशें की गई हैं। गवाही के नियमों की जांच करते समय समिति को "सस्ती मुकदमेबाजी की जादूभरी कुंजी हाथ नहीं लगी।" उनके विचार में इस बारे में सबसे मुफीद सुधार यह होगा कि मौजूदा तरीके में "छोटे-छोटे सुधार" किए जाएं। मिसाल के तौर पर उसने सिफारिश की है कि गवाही देते समय गवाह को इस बात का हक होना चाहिए कि वह अपनी इच्छानुसार खड़ा रहे या बैठ जाए। इसके अतिरिक्त यह बताया गया है कि "बदनामी" के मुकदमों में मुकदमे के बीच में पक्षों को, पुलिस के सामने गवाहों के बयान और पुलिस की गवाही के प्रमाण शीघ्र ही प्राप्त कराने के लिए क्या प्रबन्ध किए जाएं। मुकदमेबाजी में अपीलों पर बहुत खर्च होता है इसीलिए समिति ने एक योजना प्रस्तुत की है ताकि कुछ चुने हुए मुकदमों को अपील की अदालत में ले जाने की आवश्यकता न पड़े और उच्च न्यायालय से सीधा लार्ड्स सभा में जाना संभव हो सके। यह भी सिफारिश की गई है कि एक ऐसा यन्त्र बनाया जा सकता है "जिसके द्वारा असाधारण सार्वजनिक हित के कानूनी नुक्तों का सरकारी खर्च पर फैसला हो सके।" इस बात की आवश्यकता की ओर ध्यान दिलाया गया है कि अदालत में आने से पहले मुकदमा लड़ने वालों के सलाहकारों के बीच छोटे-छोटे नुक्तों का

फैसला करने की कोशिश की जाए। समिति द्वारा प्रस्तावित विभिन्न तरीकों में से कोई भी इच्छानुसार अपनाया जा सकता है, जबरदस्ती लागू नहीं किया जा सकता। जैसा कि "टाइम्स" के सम्पादकीय में कहा गया है, न्याय के खर्च को कम करने में ये तरीके वास्तव में कितने सफल रहेंगे, यह इस बात पर निर्भर होगा कि वकील लोग अपने मुवक्किलों के हित में उनका प्रयोग करने के लिए रजामन्द होंगे अथवा नहीं। 'टाइम्स' पत्र की संपादकीय टिप्पणी के अन्त में वकीलों से निम्न अपील की गई है :—

"प्रत्येक न्यायाधीश, जो सीधा रास्ता अपनाता है और जिससे किसी भी पक्ष को हानि नहीं होती, एक कीमती मिसाल कायम करता है। यह आशा की जा सकती है कि यदि इस प्रकार प्रोत्साहन दिया जाए तो वकील और कानूनी सलाहकार मुकदमे को तैयार करने में अव्यवस्थित और बिना सोचे-समझे कार्य द्वारा अदालत में मुकदमे के खर्च को न बढ़ाने के लिए अधिक दृढ़ निश्चय करेंगे। संभव है कि केवल समिति द्वारा बताए गए संक्षिप्त तरीके ही मुकदमे की तैयारी करने में वकीलों को अधिक सूक्ष्मव्यवहारी न बना सकें, परन्तु रिपोर्ट में आरम्भ से अन्त तक कानून की इज्जत के लिए वकीलों को जोश दिलाने की अपील निहित है। यह ऐसी प्रेरणा है जो कभी असफल नहीं हो सकती।"

ब्रिटेन के न्यायाधीशों और वकीलों से की गई इस अपील पर भारत के न्याय-व्यवस्था क्षेत्र में कार्य करने वाले महानुभावों को भी संजीदगी और उत्साह से विचार करना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि कानूनी तरीके में कई बड़ी और कई छोटी तब्दीलियां की जाएं तो मुकदमेबाजी के फैसले शीघ्र हो सकेंगे और खर्च घट जाएगा। परन्तु कानून सुधार की किसी भी योजना में न्यायाधीशों और वकीलों के मन में पूर्ण परिवर्तन करने के मानवी तत्व का वास्तव में बहुत ही महत्व है।

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होती है कि हमारे अपने देश में उत्तर प्रदेश सरकार ने इस सिलसिले में अगवानी की है। अप्रैल १९५० में उसने न्यायाधीश श्री के. एन. वानचू की अध्यक्षता में एक 'अदालती सुधार समिति' नियुक्त की थी। समिति ने १९५२ में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और उत्तर प्रदेश की सरकार ने इसकी अधिकतर सिफारिशों को मान लिया है। कानून में तब्दीलियां चाहने वाली सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिये राज्य की विधान सभा में एक कानून पेश करने पर विचार किया जा रहा है। अन्य सिफारिशें जिन के लिये कानून

में कोई तब्दीली करने की आवश्यकता नहीं है और जिनको शासकों की आज्ञाओं और घोषाणाओं द्वारा लागू किया जा सकता है, शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित की जा रही हैं। ऐसी सिफारिशें, जिन के कारण भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की प्रथम सूची में आने वाले कानूनों का सुधार होना है, जरूरी कार्यवाही के लिये भारत सरकार को भेज दी गयी हैं। अब समिति की सिफारिशों का दिग्दर्शन कीजिये। समिति ने यह सुझाव रखा है कि "ज्यादा मुकदमों का छोटी अदालतों में फैसला किया जाये।" समिति ने यह भी सिफारिश की है कि "अदालती कार्यवाही एक साथ ही रजिस्ट्री डाक द्वारा भेजी जानी चाहिये" तथा "कागजात की सचाई से झूठा इंकार करने के लिये खास खर्च दिया जाना चाहिये।" यह प्रस्ताव रखा गया है कि "तलाक कानून, उत्तराधिकार कानून और मुद्रण संबंधी एकाधिकार कानून से संबंध रखनेवाले मामलों में उच्च न्यायालय एवं जिला अदालत का साथ साथ न्यायाधिकार खत्म कर दिया जाय और इन कानूनों के मातहत मुकदमों की केवल जिला अदालतें ही सुनवाई करें।" समिति ने सुझाव दिया है कि "सेशन अदालत के मुकदमों की सुनवाई में न्यायाधीश के सहायकों की मदद न ली जाये" और "जूरी की मदद से सुनवाई करने का तरीका खत्म कर दिया जाय।" यह सिफारिश की गई है कि अदालती काम के लिये कमिश्नरों और रेवेन्यू बोर्ड के पद खत्म कर दिये जायें तथा उनका काम यथोचित जिला न्यायाधीशों और उच्च न्यायालय को सौंप दिया जाये। अदालतों पर से काम का मौजूदा बोझ हल्का करने के लिये यह प्रस्ताव रखा गया है कि "दीवानी न्यायाधीशों की संख्या बढ़ा दी जाये।" धीरे धीरे तहसीलों के मुख्य कार्यालयों में अदालतें स्थापित की जायें। समिति ने जोरदार शब्दों में सिफारिश की है कि "अनावश्यक विलम्ब, अलग-अलग गवाही लेना, बहस या फैसला सुनाने की लम्बी तारीखें देना तथा हुक्मनामों पर हौले-हौले हस्ताक्षर करना छोड़ दिया जाए।"

अनुचित देर और इसके फलस्वरूप न्याय की महंगाई वाले कानूनी सुधारों के अर्थशास्त्र के अलावा यह जरूरी है कि न्यायशास्त्र की उस धारणा का ही पुनः संशोधन किया जाये जो यह कहती है कि ९ मुजरिम भले ही छूट जायें परन्तु एक निर्दोष व्यक्ति को सजा नहीं मिलनी चाहिये। हमारा नया आदर्श निम्न होना चाहिये: "किसी निर्दोष व्यक्ति को सजा नहीं मिलनी चाहिये, परन्तु कोई मुजरिम भी सजा से खाली नहीं जाना चाहिये।" चोरबाजारी, कानून के खिलाफ शराब बनाना, खाद्य पदार्थों में मिलावट करना एवं भ्रष्टता का दौर-दौरा इत्यादि समाजविरुद्ध कार्यों का नाश करने के लिये यह जरूरी है कि कड़ी सजाएं दी जाएं। यह भी जरूरी है कि कम-से-कम सजाएं कानूनों में ही निर्धारित कर

दी जाएं ताकि न्यायाधीश सख्त समाज-विरुद्ध अपराधों के विरुद्ध अनुचित नर्मी का व्यवहार न कर सकें। हमें पूर्ण आशा है कि भारत सरकार और राज्य सरकारें हमारी कानून पद्धति की इन कमियों पर गंभीरता से विचार करेंगी ताकि न्याय सस्ता सरल और तीव्र हो सके तथा साधारण मनुष्य राष्ट्रपिता के आदर्शों के अनुसार असली आजादी का चमत्कार देख सके।

५ अगस्त, १९५३

: ३१ :

शासनिक जंगल की सफाई

पिछले कुछ सप्ताहों में हमारे प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू बड़े स्पष्ट रूप से भारत के वर्त्तमान शासनिक यंत्र की कमियों की ओर इंगित करते रहे हैं। यह यन्त्र हमें विदेशी शासकों से विरासत में मिला है। सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में राज्यों के कृषि मंत्रियों के सम्मेलन का उद्‌घाटन करते समय प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा कि सरकारी अफसर साधारण मनुष्य की समस्याओं की ओर "कोट, नेकटाई और कालर की दृष्टि से" देखते हैं। "आज साधारण लोगों और सरकारी अफसरों के बीच एक चौड़ी खाई विद्यमान है, सरकारी अफसर साधारण व्यक्ति की भाषा में बात नहीं करते, इसलिए उनके लिए अपने अनुसंधान और परिश्रम के निष्कर्षों को दूसरों तक पहुंचाना कठिन हो जाता है।" अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में सिंचाई एवं शक्ति के केंद्रीय बोर्ड की चौबीसवीं वार्षिक बैठक में भाषण देते हुए प्रधान मंत्री जी ने भावपूर्ण शब्दों में कहा कि नई दिल्ली एक "शासनिक जंगल" है—"निस्संदेह, इस जंगल में योग्य शासक हैं, परन्तु फिर भी यह है तो जंगल ही।" प्रधान मंत्री ने चपरासियों पर निर्भर रहने पर भी दुःख प्रकट किया : "दफ्तर में बगल के कमरे में बैठे हुए व्यक्ति के पास लम्बे-लम्बे नोट लिख कर भेजना व्यर्थ है।" "क्या कारण है कि ऐसा अधिकारी दूसरे कमरे में नहीं जा सकता या टेलीफोन का इस्तेमाल नहीं कर सकता ?" प्रधान मंत्री ने बतलाया कि द्वितीय विश्व महायुद्ध से पूर्व नई दिल्ली में चपरासियों की आबादी ३२०० थी जो अब १९,००० हो गई है। इस महीने के आरम्भ में रेलवे बोर्ड के संचालकों और रेलवे के मुख्य प्रबंधकों के सामने बोलते हुए श्री नेहरू ने इस बात पर जोर दिया कि शासकों को "मानसिक दृष्टि से अच्छी प्रकार सचेत रहना चाहिए और वर्त्तमान युग की राजनीतिक और वैज्ञानिक उन्नति से अपने आप को परिचित रखना चाहिए।" प्रधान मंत्री ने अधिकारियों से कहा कि वे तेजी से परिणाम प्राप्त करने के लिए "एक सशक्त दृष्टिकोण" अपनावें। सात नवम्बर को चंडीगढ़ में पंजाब की सचिवालय आधारशिला रखते हुए श्री नेहरू ने "सरकारी सचिवालय में कार्य करने की रीति को बदलने की" आवश्यकता पर जोर दिया। "पुराने मार्ग को सदा के लिए बिदाई दे देनी चाहिए और उच्च अधिकारियों को यह महसूस करना चाहिए कि उन्हें जनतांत्रिक ढंग की सरकार की स्थापना से उत्पन्न हुए वातावरण और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार एक नई चेतना से कार्य करना है।"

योजना आयोग ने भारत सरकार का ध्यान इस ओर दिलाया है कि एक कल्याणकारी राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सरकारी शासन में "सचाई, कार्यकुशलता, मितव्ययता और जनता का सहयोग" प्राप्त करने की जरूरत है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आगरा प्रस्ताव ने भी सरकार पर इस बात का दबाव डाला है कि जनतांत्रिक समाज की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शासनिक ढांचे में सुधार होना चाहिए। यद्यपि प्रोफेसर एपलबी ने भारत सरकार को "संसार की एक दर्जन के लगभग सर्वोन्नत सरकारों की" श्रेणी में रखा है, तो भी उन्होंने हमारे देश की शासन पद्धति की कार्य रीति में कई कमियां बताई हैं। उन्होंने बताया है कि हमारे शासनिक श्रम की योजना में किस प्रकार "जिम्मेदारी" अत्यधिक लोगों के हाथों में "फैली हुई है।" पद में "बड़ेपन" के तरीके की ओर इशारा करते हुए प्रोफेसर एपलबी ने कहा है कि भारत के शासन में "बहुत ज्यादा सामन्ती विरासत" है और वह "मानवी संबंधों पर बहुत कम आधारित है।" कार्यकर्त्ताओं को जान बूझ कर "बहुत ही अलग सी प्रतीत होने वाली श्रेणियों" और ऐसी ही बहुत-सी "विशेष सेवाओं" में बांटा गया है। "परिणामस्वरूप इस बात को बहुत कम महसूस किया जाता है कि सरकारी नौकरी एक ही है और आपसी ईर्ष्या प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।" शासनिक तरीकों में "गहरे रद्दोबदल" की जरूरत है: "फाइल करने के तरीकों और उससे संबंधित कार्य" की ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए। आजकल "यह कार्य कागजों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के पुराने तरीके से किया जाता है।" श्री एपलबी यह भी कहते हैं कि कार्य करने के कानून, सचिवालय संबंधी आज्ञाएं और दफ्तर के कार्य से संबंध रखने वाली पुस्तकें "आम तौर पर बहुत उपदेश पूर्ण, सीमित रखने वाली, बहुत विस्तृत और विचार-शून्य" प्रतीत होती है। आवश्यक तौर पर उनसे "ऐसी लीक-पिटाई को प्रोत्साहन मिलता है जिससे आत्मा, विचार-शक्ति और विचार निर्णय पर पानी पड़ जाता है और ये ही अच्छे शासन के लिए आवश्यक हैं।" पता चला है कि भारत की शासन-पद्धति में सुधार की समस्या पर इस समय सरकार सक्रिय रूप से विचार कर रही है और प्रधान मंत्री स्वयं जल्दी से जल्दी शासनिक ढांचे में रद्दोबदल करने के लिए बहुत उत्सुक हैं। हमें यह जान कर प्रसन्नता होती है कि हमारे अदालती ढांचे में महत्वपूर्ण तब्दीलियों से युक्त एक विधेयक संसद् के शरदऋतु में होने वाले अधिवेशन में लाया जा रहा है। हमें पूर्ण आशा है कि भारत सरकार शीघ्र ही शासनिक यंत्र को पुनः उज्ज्वल बनाने की भी अपनी नीति की स्पष्ट शब्दों में घोषणा करेगी ताकि विभिन्न राज्य सरकारें अपनी मौजूदा सरकारी मशीनरी को सुधारने के लिए ऐसे ही कदम उठा सकें और भारत में सामाजिक तथा आर्थिक प्रगति की चाल को

अधिक तीव्र कर सकें।

हमने देश के सरकारी शासन में सुधार से संबंधित प्रायः सभी प्राप्त सामग्री का अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। हमने हूवर आयोग की रिपोर्ट को भी देखा है जो संयुक्त राज्य अमरीका के शासन पुनर्गठन के संबंध में है। यहां उन सब बातों का संक्षिप्त वर्णन कर देना उपयुक्त होगा जिनकी ओर, मौजूदा शासनिक ढांचे में सुधार करने के लिये, केंद्रीय और राज्य सरकारों को तुरन्त ध्यान देना आवश्यक है :—

१. नौकरियों में लगाने, शिक्षा देने और तरक्की देने के तरीकों में बहुत तब्दीलियां करने की जरूरत है। सरकारी नौकरियों के लिये सुयोग्य व्यक्ति चुनने के आयोगों को इस बात की कोशिश करनी चाहिए कि "जबानी परीक्षाओं" के साथ-साथ "मानसिक परीक्षाएं भी ली जाएं। अखिल भारतीय शासनिक सेवाओं के लिए वर्त्तमान शैक्षणिक स्कूलों के स्थान में सरकार को सरकारी शासन संबंधी शिक्षा देने के लिए एक उत्तम कालिज खोलना चाहिए जो विद्यार्थिनों में सचाई, कार्यकुशलता, कमखर्ची एवं जनसेवा के उच्चतम आदर्शों का संचार करने के योग्य हो । विशिष्ट नौकरियों के लिए तरक्की देने और सुयोग्य व्यक्ति चुनने की रीति को अधिक लचीली और मनुष्यत्वपूर्ण बनाना चाहिए। केवलमात्र "नौकरी में पहले से आ जाने" पर बहुत ज्यादा जोर देने और योग्यता और अनुरूपता की ओर ध्यान न देने से सरकारी शासन में उच्च स्तरों को बढ़ावा देने के कार्य को हानि होती है ।

२. कागजात के काम को निपटाने के कानूनों, नियमों और तरीकों में तब्दीली करने में अब और अधिक देर नहीं की जा सकती । मौजूदा तरीके बहुत सुस्त और पेचदार हैं और फाइलें अगणित विभागों में खो जाती हैं । "सचिवालय के पुनर्गठन" पर संसद् की मूल्य-निरूपण समिति की रिपोर्ट पर और अधिक ध्यान देने की जरूरत है ताकि इसकी बहुमुखी सिफारिशों को कार्यान्वित किया जा सके । संक्षेप में 'लाल फीतावाद' को कम से कम कर देना आवश्यक है।

३. सरकारी व्यय पर संसद् का अधिक कड़ा निग्रह होना चाहिए और, जैसा संसद् की सरकारी हिसाब-किताब संबंधित समिति ने सिफारिश की है, तुरन्त ही हिसाब-किताब की जांच करने वाले विभाग को अलग-अलग कर देना चाहिए। परन्तु खर्च की सब मदों को वित्त मंत्रालय की मंजूरी के लिए भेजने

की वर्त्तमान रीति को दोहराने की जरूरत है । वित्तीय निग्रह के तरीके को जहां एक ओर सरकारी धन की रक्षा करनी चाहिए वहीं साथ ही साथ विकास योजनाओं के कार्यान्वित करने में अनुचित विलम्ब को रोकना चाहिए । वास्तविक खर्च की और अधिक अच्छी प्रकार जांच-पड़ताल करने के नए ढंग भी अपनाने अपनाने चाहिएं ।

४. राजनीतिक शक्ति के विकेंद्रीकरण की यथाक्रम योजना के बिना शासन में कार्यक्षमता और गति लाना असंभव होगा । भारतीय संविधान के निदेशक तत्वों के अनुसार देश भर में स्वराज्य की मौलिक इकाइयों के रूप में पंचायतों की स्थापना करने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। विभिन्न राज्यों में पंचायतों के कार्यों का अध्ययन करने और इन स्थानीय शासन के अंगों की नींव अधिक मजबूत करने की दृष्टि से और अधिक सिफारिशें करने के लिए भारत सरकार एक आयोग की नियुक्ति कर सकती है।

५. उच्च अधिकारियों और मंत्रियों के चरित्र के बारे में पूछ-ताछ करने के लिए एक स्थायी मशीनरी बनानी चाहिए ताकि सार्वजनिक जीवन में सचाई के ऊंचे स्तर संभव हो सकें । यह मशीनरी राष्ट्रपति, केंद्रीय सरकार, राज्यपालों अथवा राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त किए गए विशेष न्यायालयों के रूप में हो सकती है । इन न्यायालयों के साथ-साथ मन्त्रालयों को इस बात की ओर ध्यान देना चाहिये कि वैभागिक पूछ-ताछ शीघ्रतापूर्वक होती है । सरकारी नौकरी के नियमों को भी इस प्रकार दोहराना चाहिए कि दषित और अयोग्य अधिकारियों को शीघ्रता से निकाला जा सके और ईमानदार और कार्यक्षम अधिकारियों को उचित फल मिले ।

६. सरकारी नौकरों के विरुद्ध खुले आम और समाचारपत्रों में अनुचित दोष लगाने को रोकने के लिए सरकार को एक तरीका निश्चित करना चाहिए जिसके अनुसार संबंधित अधिकारी के लिये कानूनी अदालत में अपने नाम से धब्बा धोना संभव हो सके । सरकारी शासन की अविवेकपूर्ण निन्दा और समाचारपत्रों में भयानक और निराधार लांछन प्रकाशित करने की रीति को भी निरुत्साह करना चाहिए। सरकार को चाहिए कि विशेष अधिकारियों के विरुद्ध लगाए गए विशेष लांछनों के संबंध में वह जनता को अपने विश्वास में लाए और आवश्यकतानुसार ऐसे लांछनों की काट करे ।

७. मंत्रियों और सरकारी उच्च पदाधिकारियों के व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण के लिए नियम बनाने चाहिएं। उदाहरणार्थ, उनके लिए यह जरूरी होना चाहिए कि वे प्रति वर्ष न केवल अपनी और अपने निकट संबंधियों की अचल जायदाद बल्कि अस्थावर संपत्ति का भी हिसाब दें। जैसी योजना आयोग ने सिफारिश की है, राजनीतिक या सरकारी जिम्मेदार पदाधिकारियों को ऐसे सब सामाजिक संबंधों या जल्सों से दूर रहना चाहिए जिनसे उनकी "निःस्वार्थता और निष्पक्षता" की स्थिति में फर्क आए।

ये बातें केवल उदाहरणमात्र हैं, विस्तार में नहीं। इनका यहां इसलिए उल्लेख किया गया है ताकि उनपर विचार करने के लिए प्रोत्साहन दिया जा सके। सरकारी अधिकारियों की निराधार निन्दा में पड़ना बुरा और व्यर्थ है। भारत सरकार इस समय न केवल केंद्र में बल्कि राज्यों में शासनिक जंगल की सफाई करने के लिए दृढ़ निश्चयी है। इस महत्वपूर्ण कार्य को करने में अपने विशिष्ट सुझावों एवं रचनात्मक सहयोग से हमें प्रधानमंत्री की सहायता करनी चाहिए।

२० नवम्बर, १९५३

राष्ट्रीय सुरक्षा का अर्थशास्त्र

हाल ही में संसद् में विदेश नीति पर हुए वाद-विवाद का न केवल इस देश के लिए ही बल्कि संसार के दूसरे भागों के लिए भी अत्यन्त महत्व है। प्रधान मंत्री ने एक बार फिर दोनों शक्ति गुटों से अलग रहने तथा शांति, परस्पर सद्भावना और सहयोग की नीति का अनुकरण करने के भारत के दृढ़ निश्चय का बड़े जोर-दार शब्दों में एलान किया। उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका और पास्कितान के बीच प्रस्तावित सैनिक सहायता संधि की ओर विशेष संकेत किया और पाकिस्तान को ऐसी संधि के भयानक खतरों को महसूस करने की दोस्ताना चेतावनी दी। प्रधान मंत्री ने कहा, "जब मैं किसी पश्चिम के देश द्वारा पूर्व के किसी दश को मुफ्त सैनिक सहायता देने के प्रश्न पर विचार करता हूं तो मुझे पहला ध्यान एशिया के अतीत इतिहास का आता है।" "पिछले २०० या ३०० वर्षों का इतिहास मेरे सामने आ जाता है जो धीरे-धीरे यहां घुसकर और अपने पांव जमाकर बस्तियों पर प्रभुत्व करने का इतिहास है।" तब प्रधान मंत्री ने आधुनिक संसार में एकमात्र शस्त्रों द्वारा ही सुरक्षा की उपयोगिता के संबंध में कई बहुत महत्वपूर्ण बातें कहीं। दूसरे राष्ट्रों से सशस्त्र सुरक्षा करने का विचार ही "हमें दुर्बल और भीरु बनाता है।" श्री नेहरू ने आगे कहा :—

"हम किसी देश से उसकी सेना बुला कर अपनी रक्षा करने के लिए नहीं कहेंगे। हमारे पास काफी सशस्त्र सेनाएं हैं अथवा नहीं, परन्तु यदि कोई ऐसा नाजुक मौका आ पड़ता है तो शायद हमारे पास एक दूसरी वस्तु है जो हमारी सहायक हो सकती है और वह 'मानव भावना' है। यदि दूसरों पर निर्भर रह कर हम उस भावना को खो बैठते हैं तो यह एक खतरनाक बात होगी। यदि भारत की आत्मा मर जाती है तो भारत के संरक्षण का क्या लाभ होगा ?"

प्रधान मंत्री के मुख से निकले इन बुद्धिमत्तापूण शब्दों पर गंभीरता से सोचने और विचारने की आवश्यकता है। इनमें जीवन का वह दर्शन है जिस का गांधीजी ने भारत और संसार के सामने प्रचार किया। किसी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके सशस्त्र सैनिकों संख्या में नहीं है बल्कि अपनी आत्मिक शक्ति में, सब हमलों का मुकाबला करने की मानसिक शक्ति में है। वर्त्तमान मनोविज्ञान की दृष्टि से हम ऐसा कहेंगे कि राष्ट्रीय सुरक्षा की समस्या अन्त में नागरिकों के

चरित्र की समस्या है। राष्ट्रीय सुरक्षा का संगठन न केवल भूमि पर, समुद्र में और हवा में करना है परन्तु लोगों के दिलों और दिमागों में भी। यह तभी संभव हो सकता है जब लोगों को अपने भाग्य पर और अपने नेताओं के गतिवान आदर्श पर विश्वास हो। लोगों में ऐसा विश्वास केवल उसी दशा में उत्पन्न किया जा सकता है जब आर्थिक असमानताओं के कारण पड़ी गहरी खाई को पाटने के विचार से महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक सुधार करने के लिए नेताओं में क्रांतिकारी भावना हो। प्लेटो के शब्दों में, एक देश में जहां दो "राष्ट्र" हों—अमीरों का राष्ट्र और गरीबों का राष्ट्र—लोगों में विश्वास और सद्भावना उत्पन्न करना असंभव है। मानव भावना उसी समय बहुत ऊंची उठ सकती है और सशस्त्र शक्ति पर विजय पा सकती है जब इसके पैरों में सामाजिक और आर्थिक असमानताओं की बेड़ी न पड़ी हो।

प्रधान मंत्री ने भारत में अनिवार्य सैनिक शिक्षा देने के प्रस्ताव की ओर संकेत किया। उन्होंने इस संबंध में केवल इसी कारण से क्योंकि पाकिस्तान संयुक्त राष्ट्र अमरीका से मुफ्त सैनिक सहायता लेने पर विचार कर रहा है, घबड़ाने और पागल होने के विचार को तुच्छ बताया। सैनिक शिक्षा पर खर्च होने वाला सब धन "कहीं न कहीं से बचा कर लगाना होगा और यह धन आवश्यक तौर पर उन विभिन्न आर्थिक कार्यों से हटाना होगा जिन पर सरकार खर्च करने की कोशिश कर रही है।" श्री नेहरू ने कहा, "अन्त में किसी देश की शक्ति उसकी आर्थिक प्रगति पर ज्यादा निर्भर होगी।" "यदि आर्थिक दृष्टि से देश दुर्बल होगा तो मिलकर कदम बढ़ाने वाले बहुसंख्यक लोग भी भी कुछ नहीं कर सकेंगे।" जो लोग भारत में सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर देने के हक में बढ़चढ़ कर बातें करते हैं, अच्छा होगा यदि वे प्रधान मंत्री के इन शब्दों पर गंभीरता से विचार करें। आजकल के राजनीतिज्ञ अपने लोगों को घृणा और भय के भोजन पर रख सकते हैं और जनसाधारण के सामने अन्त में "बंदूक या मक्खन" दोनों में से एक को चुनने की बात रखते हैं। आधुनिक बंदूकें अत्यन्त महंगी वस्तुएं हैं और वे राष्ट्र के शरीर और आत्मा दोनों को भूखा रख कर मृतप्राय ही कर देती हैं। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि भारत को अपनी सशस्त्र सेनाओं से बिल्कुल हाथ धो बैठना चाहिए। हमारे इस अपूर्ण संसार में राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए कुछ न्यूनतम सैनिक शक्ति लगभग अनिवार्य ही है। परन्तु हमें साफ तौर पर यह महसूस करना और समझ लेना चाहिए कि अणुशक्ति के वर्त्तमान काल में केवल सैनिक शक्ति अधिक सहायक नहीं है। अणुबम का सफलता से मुकाबला करने के लिए हमें गांधीजी के विचार के अनसार 'अणुपुरुष' का विकास

करना होगा। वास्तव में आत्मा की शक्ति ही अणुबम का एकमात्र सफल उत्तर है। यह केवल दर्शन या कल्पना नहीं है। यह तो आधुनिक विचार और मनोविज्ञान का सारांश है ।

प्रधान मंत्री ने नागरिक और औद्योगिक मतलब के लिए अणुशक्ति के प्रयोग की ओर भी संकेत किया।" "हम १५० वर्ष पूर्व की औद्योगिक क्रांति से भी बड़ी क्रांति के निकट बैठे हैं।" दस या पन्द्रह वर्ष के भीतर संसार के औद्योगीकरण के ढांचे में ही तब्दीली करने के लिए अणुशक्ति का प्रयोग संभव हो सकता है। कोयले के प्रयोग से कुछ हद तक कारखानों का एक विशेष इलाके में केंद्रीकरण आवश्यक हो गया था। विद्युत-शक्ति के आविष्कार ने औद्योगिक मिलों का विकेंद्रीकरण उपयोगी बना लिया है। परन्तु निसंदेह अणुशक्ति के प्रयोग से औद्योगिक ढांचे में विकेंद्रीकरण अनिवार्य हो जाएगा। विज्ञान के इस काल में केंद्रीकरण न केवल अवैज्ञानिक साबित हो रहा है, परन्तु सुरक्षा की दृष्टि से खतरनाक भी। बड़े कारखानों को आसानी से बमों और हवाई युद्ध का निशाना बनाया जा सकता है। अतः विकेंद्रीकृत औद्योगिक संगठन ही एकमात्र ऐसा आयोजन है जो अणुकाल के हमलों से बच सकता है। पश्चिमी देशों के बड़े-बड़े यन्त्र प्रयोग करने वाले और अत्यन्त केंद्रित उद्योगों का इस समय ढांचा बदलना कठिन है। परन्तु कोई वजह नहीं कि भारत क्यों अन्य देशों की गलतियों को दोहराए और औद्योगिक संगठन के बड़े पैमाने के केंद्रित तरीके की नकल करने की कोशिश करे। छोटे पैमाने के और कुटीर उद्योगों से बहुत से दूसरे फायदे हैं। हमें विश्वास है कि उत्पादन के साधनों का कुटीर और घरेलू कारखानों के रूप में विकेंद्रीकरण किए बिना बेरोजगारी की समस्या को सफलता से सुलझाया नहीं जा सकता। परन्तु राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से भी हमारे उद्योगों का विकेंद्रीकरण न केवल उपयोगी ही है बल्कि अनिवार्य भी । चीन में औद्योगिक सहकारिता के आन्दोलनों ने सुरक्षा के एक दूसरे साधन का काम दिया। वहां के लगभग सभी गांवों में औद्योगिक सहकारी समितियों के बिना लोगों के लिए जापानी हमलों का मुकाबला करना संभव न हो सकता था । इस समय जब कि हम प्रथम पंचवर्षीय योजना के बीच में हैं यह अत्यन्त आवश्यक है कि आत्म-सुरक्षा की दृष्टि से विकेंद्रीकृत आर्थिक व्यवस्था के मतलब को पूर्णतया समझा जाए ताकि हम अतीतकाल में अन्य देशों द्वारा की गई गलतियां न दोहराएं ।

संयुक्त राज्य अमरीका और पाकिस्तान के बीच सैनिक संधि की संभावना से कुछ हलकों में डर और सनसनी उत्पन्न हो गई है। परन्तु प्रधान मंत्री ने

विदेश नीति पर अपने भाषणों में बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि घबड़ाने और पागल होने का कोई कारण नहीं । गांधीजी ने अहिंसा, सशक्त मन और अपने ध्येय की अच्छाई में पक्के विश्वास से एक शक्तिशाली साम्राज्य से स्वतन्त्रता प्राप्त की। इसी प्रकार नवीन भारत के पुनर्निर्माण के लिए जो आदर्श हमने अपने सामने रखे हैं, उनमें पक्के विश्वास और दृढ़ निश्चय से सब परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। ये वे आदर्श हैं जिनकी शिक्षा सहनशीलता और दृढ़ता के साथ गांधीजी ने हमें दी । यदि हम भय और घृणा की दो प्रवृत्तियों पर विजय पा लें तो संसार की कोई भी शक्ति हमारा आत्म-विश्वास भंग नहीं कर सकती और हमारी स्वतन्त्रता पर, जो राष्ट्रपिता ने सत्य और अहिंसा के अपर्व शस्त्रों की सहायता से हमें दी, आघात नहीं कर सकती।

५ जनवरी, १९५४

शासनिक यंत्र में सुधार

अपनी गत १६ मई की बैठक में कांग्रेस कार्यकारिणी ने सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम सम्बन्धी जो प्रस्ताव स्वीकृत किया, उसमें कहा गया था कि "शासनिक यन्त्र को अब कल्याणकारी राज्य की स्थापना से सम्बन्धित नये प्रश्नों का सामना करना है।" और यह कि "इस दृष्टिकोण से ही अब सरकार को नौकरियों का पुनर्गठन करना चाहिए।" राष्ट्रीय आयोजन कमीशन ने भी अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना में शासन यन्त्र में सुधार पर बहुत जोर दिया है। उसने कहा है कि "हमारा विकास का कार्यक्रम किस रफ्तार से पूरा होता है, यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है, कि शासनिक यन्त्र कितना श्रेष्ठ है, उसकी कार्यकुशलता किस स्तर की है, और किस हद तक वह सहयोग प्राप्त कर पाता है।" अंग्रेजी जमाने में सरकारी शासन-यन्त्र की मुख्य जिम्मेदारी सरकारी करों को इकट्ठा करना और देश में कानून और व्यवस्था स्थापित रखना था। पर अब स्वतन्त्रता के बाद शासन का मुख्य ध्येय देश के मानवीय एवं भौतिक साधनों को विकसित करना है और देश से भूख, गरीबी और बेरोजगारी दूर करना है। यह सही है कि सब ही सरकारी नौकरों की निन्दा करना और एक ही झाड़ से सब को रंग देना ठीक नहीं है, तथा इस नग्न सत्य को हमें मानना ही होगा कि अभी तक देश के सरकारी नौकर अपनी नई जिम्मेदारियों को नहीं समझ पाये हैं और नई एवं सुदृढ़ सामाजिक और आर्थिक बुनियाद पर राष्ट्र के पुर्ननिर्माण का कार्य पूरा करने की दिशा में उनमें बहुत कमी पाई गई है। निश्चय ही गत ५ वर्षों में राष्ट्र ने कुछ बहुत महान कार्य पूरे किये हैं। सच तो यह है कि हमारी पिछली सफलतायें संसार के किसी भी देश की सफलताओं से, यहां तक कि रूस और अमरीका की सफलताओं से भी कम नहीं हैं। भारत ने एक नया संविधान बनाया है। गत आम चुनावों के बाद हमने अभूतपूर्व तरीके से देश में सरकारों का पुनर्गठन किया है। ६०० से कुछ अधिक देशी राज्यों को समाप्त कर हमने अपने प्रदेशों का पुनर्संगठन किया है। कांग्रेसी सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना को तैयार कर देश के सामाजिक और आर्थिक ढांचे का पुनर्गठन करने का भी प्रयास किया है। कांग्रेस संस्था के पुनर्संगठन का कार्य भी काफी आगे बढ़ चुका है। अब सरकारी नौकरियों के पुनर्संगठन के महत्वपूर्ण काम को पूरी गम्भीरता के साथ, बिना वक्त खोये हुए, उठाना है। योजना कमीशन ने सही ही कहा है कि "जनता का सहयोग और सद्भावना तभी प्राप्त हो सकती है, जब उसको शासन की ईमानदारी और कार्यकुशलता पर विश्वास हो।" सच बात तो यह है कि पंचवर्षीय

योजना को सफलतापूर्वक पूरा करने में के काम में एक बड़ी कमी इसी कारण पैदा हो रही है कि आज जनता में सरकारी नौकरों की ईमानदारी और कार्यकुशलता पर विश्वास की भावना नहीं है।

केन्द्र में और राज्यों में शासनिक-यन्त्रों को उचित रूप से पुनर्गठित करने के लिए कई योजनायें तैयार हुई हैं। स्वर्गीय श्री गोपालस्वामी आयंगर ने कुछ बड़े मूल्यवान सुझाव दिये थे। केन्द्रीय सचिवालय के पुनर्गठन के सम्बन्ध में संसद् की अनुमान समिति ने भी एक बड़ी लाभप्रद रिपोर्ट दी थी। योजना कमीशन के कहने पर श्री ए० डी० गोरावाला ने शासनिक-यन्त्र पर एक रिपोर्ट दी थी जिसमें उन्होंने सरकारी यन्त्र में ईमानदारी और कार्यकुशलता लाने के लिये कई कार्यों को करने की सिफारिश की थी। उनके सुझावों में से कई सुझाव पंचवर्षीय योजना की रिपोर्ट में सम्मिलित भी कर लिये गये हैं। हाल में प्रो० एपलबी नामक सुप्रसिद्ध अमरीकी शासनिक-यन्त्र-विशेषज्ञ ने भारत सरकार को, सरकारी नौकरियों को लचीले आधार पर संगठित करने के लिए एक रिपोर्ट दी है। अंग्रेज विदेशी शासकों ने हमें एक "लोहे का ढांचा" दिया था जो निश्चय ही उस विदेशी हकूमत के बड़े काम का था। पर वह ढांचा स्वतन्त्र और जनतांत्रिक शासन के अन्तर्गत नये दायित्वों को पूरा करने के लिये अयोग्य है। अतः उस ढांचे में हमें दिशा-परिवर्तन लाना है और उसमें तब्दीलियां करनी हैं ताकि वह कल्याणकारी राज्य की तात्कालिक आवश्यकताओं के अनुकल प्रभावशाली तरीके से कार्य कर सके।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह बिल्कुल जरूरी है कि विभिन्न सरकारी विभागों में मौजूदा कार्यप्रणाली और नौकरी के नियमोंमें गहरा परिवर्तन किया जाय। अंग्रेजों ने ये नियम एक विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर बनाये थे। वे अपनी अफसरशाही की प्रतिष्ठा और प्रभुता स्थापित रखना चाहते थे। इसीलिये उन्होंने ऐसे नियम बनाये थे कि देश का उच्च-से-उच्च व्यक्ति भी नौकरशाही के नीचे-से-नीचे अफसर का बाल बांका न कर सकता था। यदि अब अफसरों को जनता का सच्चा सेवक बनाना है तो यह नितान्त आवश्यक है कि सरकारी नौकरी के नियमों में केन्द्रीय सरकार एवं प्रादेशिक सारकारों द्वारा आमूलचूल परिवर्तन किया जाय। भारतीय संविधान में इस बात का विधान कर दिया गया है कि इन नियतों में संशोधन संसद् और प्रादेशिक विधान सभायें कर सकती हैं। इस सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की सरकार ने मार्गदर्शन किया है। अन्य राज्य सरकारों को भी उत्तर प्रदेश सरकार के प्रयोग से लाभ उठाना चाहिए और सरकारी नौकरों की भर्ती, शिक्षा, तरक्की और बर्खास्तगी के सम्बन्ध में मौजूदा नियमों को बदलने के लिये तत्काल

कदम उठाना चाहिये। इन नये नियमों में इस प्रकार का विधान किया जाए कि योग्य पंच-अदालतों द्वारा शीघ्रातिशीघ्र विभागीय जांच की जा सके, जिससे भ्रष्ट एवं कार्य-कुशलता-विहीन सरकारी नौकर जल्दी ही प्रभावशाली तरीके से निकाले जा सकें। नियमों में इस बात की भी गुंजाइश रहनी चाहिए कि ईमानदार और कार्यकुशल अधिकारियों को अपनी योग्यता और क्षमता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त अवसर प्राप्त रहे। सरकारी नौकरों को यह बिल्कुल साफ कर दिया जाय कि केवल ईमानदार होना महत्वपूर्ण नहीं है, वरन् ईमानदार होने की प्रतिष्ठा कायम रहना भी महत्वपूर्ण है। शासनिक यन्त्र को सुधारने के इस क्रम में मुमकिन है कि बेगुनाहों पर भी चोट हो, पर केवल कुछ बेगुनाहों के सजा पा जाने के भय से हमें शासनिक यन्त्र के भ्रष्टाचार, कुनबापरस्ती और अक्षमता के विरुद्ध नियमित आन्दोलन चलाने से विचलित नहीं होना चाहिए। जहां-कहीं आवश्यकता हो, निष्पक्ष पंच-अदालतों के सम्मुख इसी शासनिक यन्त्र की सफाई के काम के सिलसिले में मन्त्रियों को भी जाने के लिये तैयार रहना चाहिये। शासन के अन्दर रहने वाले ऊंचे-से-ऊंचे और नीचे-से-नीचे व्यक्तियों का बेदाग होना अत्यावश्यक है। उनपर किसी प्रकार का संदेह नहीं रहना चाहिए और उनको सदा जांचों और पड़तालों के सम्मुख ईमानदारी स्थापित रखने के लिये तैयार रहना चाहिये।

जैसा योजना कमीशन ने कहा है, सभी सरकारी नौकरों को कहा जाय कि वे पिछले वर्ष स्वयं अथवा अपने निकट सम्बन्धियों द्वारा प्राप्त चल एवं अचल सम्पत्ति का ब्यौरा दें। वर्त्तमान नियमों के अन्तर्गत सरकारी नौकरों को केवल अपनी ही अचल सम्पत्ति का ब्यौरा देना होता है। उनको निकट सम्बन्धियों द्वारा प्राप्त सम्पत्ति के विषय में कुछ बताने की जरूरत ही नहीं रहती। यह भी सुझाव दिया गया है कि केन्द्रीय सरकार को एक विशेष जासूसी-विभाग खोलना चाहिए जिसका काम यह हो कि वह राज्यों में पाए जाने वाले भ्रष्टाचार और कुनबापरस्ती वाले मामलों की जांच करे। यह सोचा जा सकता है कि राज्यों के अच्छे-से-अच्छे अफसरान भी अपने २ क्षेत्रों में कुछ स्थानीय बातों और मुलाहिजों के कारण निष्पक्ष जांच करने के सिलसिले में आवश्यकता के अनुसार ऊपर न उठ सकें। बेईमान और अपराधी व्यक्तियों को ऐसी सजा दी जानी चाहिए कि वह उदाहरण हो जाए। उनको महज नौकरी से ही नहीं निकाल दिया जाना चाहिए, वरन् उनपर गहरा जुर्माना भी किया जाना चाहिए और तेजी से उनपर मुकदमा चलाना चाहिए। देश के नये कानूनों में भ्रष्टाचार और बेईमानी को सब से बड़ा जुर्म स्वीकार किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में जब तक हम सख्त कदम नहीं उठायेंगे तब तक वर्त्तमान शासनिक यन्त्र से उसकी विविध खराबियों और कमजोरियों को बाहर

करना सम्भव नहीं होगा।

भ्रष्टाचार समाज के किसी एक विशेष भाग में फैला हुआ नहीं है। यह अनेकों सिरों वाला दैत्य है, जिसके विरुद्ध कई मोर्चों पर हमें लड़ना होगा। भारतीय समाज से बेईमानी को उखाड़ फेंकने के लिए हमें सरकारी नौकरों, व्यापारियों तथा सामान्य जनता, सब से ही एक साथ निपटना होगा। हम सबों को भलीभांति समझ लेना चाहिए कि जनता अनेक आर्थिक कठिनाइयों और कष्टों को बर्दाश्त कर सकती है, पर वह कदापि शासन में भ्रष्टाचार और खराबी नहीं बर्दाश्त करेगी और न ही उसे करना चाहिए। भारत को आर्थिक मोर्चे पर आगे बढ़ना है। उसे चन्द सालों में ही भूख, गरीबी और बेरोजगारी को समाप्त करना है। भारत की इस प्रगति के मार्ग में जो भी बाधक होगा उसे जाना ही होगा।

५ जुलाई, १९५३

उद्‌जन बम का अर्थशास्त्र

हाल में प्रशान्त सागर में उद्‌जन बम का जो विस्फोट हुआ, उसके फलस्वरूप सारे संसार में भय, घबराहट और क्रोध की एक लहर व्याप्त हो गयी है। यह दावा किया गया है कि इस बम की विनाशकारी शक्ति हीरोशिमा पर गिरने वाले बम से ६०० या ७०० गुनी अधिक है। बिकिनी के छोटे-से द्वीप में होने वाले विस्फोट का विस्तृत विवरण हमको पता नहीं है। कोई नहीं जानता कि उसकी वजह से कितने व्यक्तियों को हानि हुई और कितनों को अभी उससे हानि होनी शेष है। समाचार पत्रों से विदित होता है कि कई जापानी मछुए उस भयंकर विस्फोट से घायल हुए हैं। जापान और उसके इर्द-गिर्द के टापुओं के लोग मछली खाने से इसलिए डरते हैं कि उसमें कहीं कोई रेडियो-ऐक्टिव तत्व तो नहीं रह गया जो उनको नुकसान पहुंचा दे। यह स्पष्ट है कि अब तक आविष्कार किये जाने वाले ध्वंसकारी अस्त्रों में उद्‌जन बम ही सबसे अधिक घातक और भयंकर है और उससे तो मानव, और मानव की सभ्यता के अस्तित्व को भी खतरा पैदा हो गया है। हमसे कहा जाता है कि इस नये बम से कोई भी बचता नहीं है और यह कि एक ही विस्फोट से लाखों आदमी विनष्ट हो सकते हैं और जाने कितने घायल हो सकते हैं और उससे भी अधिक लोग धीरे धीरे मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं या सदैव मृत्यु और मर्ज के भय की छाया में जीवन व्यतीत कर सकते हैं। कुछ दिनों पूर्व प्रो. एलबर्ट आइन्स्टाइन ने सार्वजनिक रूप से कहा था कि यदि उद्‌जन बम सफल हो गया तो उसका अर्थ यह होगा कि "सम्पूर्ण वायुमंडल रेडियो-एक्टिव जहर से व्याप्त हो सकता है और उसके फलस्वरूप पृथ्वी पर हर प्रकार का जीवन समाप्त हो सकता है—यह अब टैक्नीकल सम्भावनाओं के क्षेत्र में बात आ गयी है।" हमने यह भी सुना है कि जहां अणुबम घातक और रचनात्मक दोनों ही कार्यों के लिए इस्तेमाल हो सकता था, वहां उद्‌जन बम पूर्णतः विध्वंसकारी ही है, सामाजिक अथवा औद्योगिक कार्यों के लिए उसका व्यवहार नहीं किया जा सकता। भारतीय संसद् में एक वक्तव्य देते हुए हमारे प्रधान मन्त्री ने अपील की थी कि एक ऐसा "ठहराव" समझौता हो जाना चाहिए जिससे युद्ध और सामूहिक हत्या के इस भयंकर अस्त्र का विस्फोट बन्द हो जाए। प्रधान मन्त्री की इस अपील का सही ही सारे संसार में स्वागत किया गया है और उसकी ओर "आदरपूर्ण" ध्यान दिया जा रहा है। निश्चय ही इस अपील पर उन सबों को ध्यान देना होगा जो तीसरे विध्वंसकारी विश्वमहायुद्ध को रोकना चाहते हैं और दुनिया में स्थायी शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग चाहते हैं।

हम उद्जन बम के वैज्ञानिक और टैक्नीकल पहलुओं पर भले ही बहस कर लें, हम लोगों को नहीं भूलना चाहिए कि यह भयंकर अस्त्र संसार की दो परस्पर विरोधी आर्थिक विचारधाराओं के निहित संघर्ष का ही नतीजा है। बम्बई के चौपाटी मैदान में कुछ ही दिनों पहले भाषण देते हुए पंडित नेहरू ने कहा था कि अमरीका और रूस, दोनों ही अपने आर्थिक दृष्टिकोणों को "उस उत्साह से, धर्मान्धता और निरंकुशता के साथ चला रहे हैं जैसा कि मध्ययुग में जिहाद किया जाता था।" श्री नेहरू ने यह भी कहा कि "रूस और संयुक्तराज्य अमरीका दो विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं और एक दूसरे से डरते हैं।" "यदि उनकी विभिन्न विचारधाराएं शान्तिपूर्ण होतीं तो सम्भव था कि संसार के लोग एक या दोनों के बीच में किसी को चुन लेते। पर ये शान्तिपूर्ण तरीकों के अलावा दूसरे तरीके इस्तेमाल कर रहे हैं और दोनों यह विश्वास करते हैं कि वे एक दूसरे के खिलाफ जिहाद चला रहे हैं।" अतः यह उद्जन बम पूंजीवाद और साम्यवाद की बुनियादी आर्थिक विचारधाराओं, यानी बेलगाम पूंजीवाद और अधिनायकवाद के बीच के भयंकर, प्रचंड संघर्ष का द्योतक है। संयुक्तराज्य अमरीका, भरसक, लगभग प्रलापी ऐसा प्रयास कर रहा है कि अविकसित देशों को आर्थिक सहायता देकर साम्यवाद की बाढ़ को रोका जाए और साथ ही वह अपने 'मित्र' राष्ट्रों को फौजी सहायता दे रहा है, तथा दुश्मन देशों का विध्वंस करने के लिए भयंकर अस्त्रों की व्यवस्था कर रहा है। सोवियत रूस शान्ति की बात बड़े जोरों से करता है, पर मानव को विध्वंस करने वाले अस्त्रों को बनाने में वह अमरीका से पीछे रहने का इरादा नहीं रखता। प्राप्त रिपोर्टों से यह भी पता लगा है कि रूस किसी किस्म के नत्रजन बम को बनाने की कोशिश कर रहा है, जो उद्जन बम से भी अधिक शक्तिशाली होगा। प्रत्येक गुट यह सोचता है और यह आशा करता है कि ऐसे बमों के ईजाद होने और विस्फोट होने से विश्व शांति के लिए आवश्यक फिजा पैदा होगी और वह इस प्रकार कि दुश्मन डर जाएगा और दब जाएगा। ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि. चर्चिल ने ब्रिटिश संसद् में हाल में दिये एक वक्तव्य में कहा कि उद्जन बम तीसरे महायुद्ध को रोकने तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को स्थापित करने में सहयोगी होगा। इससे अधिक आत्मघातक और प्रलापपूर्ण वक्तव्य दूसरा नहीं हो सकता कि हिंसा द्वारा अहिंसा और पारस्परिक स्नेह की भावना प्रबल होगी। महात्मा गांधी ने हमेशा हमें बताया कि गलत तरीकों से कभी भी उचित उद्देश्य और ध्येय नहीं प्राप्त हो सकते। उद्जन बम से कभी भी किसी व्यक्ति को अथवा किसी राष्ट्र को यह नहीं समझाया जा सकता कि एक विशिष्ट आर्थिक विचारधारा ही सब से अच्छी है, और न ही उससे उन लोगो के हृदयों से और मस्तिष्कों से वह विचारधारा निष्कासित की जा सकती है, जो उसे स्वीकार किये बैठे हैं। सैद्धांतिक मतभेदों को कभी भी

झगड़े, शक्ति और दबाव से हल नहीं किया जा सकता। उन्हें पारस्परिक विचार-विमर्ष और दूसरे के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करके ही खत्म किया जा सकता है। यदि संयुक्तराज्य अमरीका ईमानदारी से यह सोचता है कि व्यक्तिगत उद्योग और पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा ही मानव का आर्थिक भला हो सकता है तो उसे चाहिये कि वह इससे विरोधी विचार रखने वाले लोगों को समझाने का प्रयास करे। इसी प्रकार यदि सोवियत रूस ईमानदारी से यह विश्वास करता है कि साम्य-वादी अर्थ-व्यवस्था मात्र से ही मनुष्य का भला हो सकता है तो उसे चाहिए कि वह अपने आदर्शों को निश्चित नतीजों से, खुली नीतियों से और स्पष्ट विवादों से सिद्ध करे, 'लौह आवरण' के बिना सिद्ध करे।

जहां तक भारत का संबंध है, उसने हमेशा अपने दिमाग को खुला रखा है और उसने सदा सब ही विचारक्रमों की सब अच्छी बातों को लेने का प्रयास किया है। जैसा कि गांधीजी ने एक बार कहा कि वे चाहते हैं कि भारत अपनी खिड़कियां हमेशा खुली रखे ताकि हमारे देश के अन्दर सब दिशाओं की हवा आ सके, पर उसी के साथ ऐसा कभी न हो कि किसी जगह से आने वाली आंधी से हमारे पैर उड़ जाएं। अतीतकाल से भारत छोटे छोटे ग्रामीण समुदायों व गणतन्त्रों का देश रहा है जो विकेन्द्रित जनतन्त्रवाद और औद्योगिक ग्रामीण उद्योगों पर आश्रित थे। इन ग्रामीण पंचायतों को "कबाइली दिनों की स्मृति" नहीं समझना चाहिए। वह युगों-युगोंके अनुभवों और परिपक्व विचारधाराओं का फल थीं। गांधीजी ने इन प्राचीन परम्पराओं पर जोर दिया और वह चाहते थे कि भारत एक ऐसे स्वस्थ और संतुलित, स्वावलंबी और स्वशासित ग्रामीण समुदायों के आधार पर विकास करे। वह पूंजीवाद और साम्यवाद, दोनों की खराबियों से बचकर एक बीच का सुनहरा रास्ता निकालना चाहते थे। विकेन्द्रित अर्थ-व्यवस्था में पहलकदमी व्यक्तियों के एक छोटे-से गुट के हाथ में रहती है और उसमें आर्थिक शोषण की गुंजाइश नहीं रह जाती है। वह पूंजीवाद की बेलगाम अर्थ-व्यवस्था और सोवियत रूस की एक किस्म की एकाधिकारी आर्थिक योजना की बुराइयों के बीच एक संतुलित मार्ग प्रशस्त करती है। वह व्यवस्था अहिंसा के आदर्शों पर और मानव के व्यक्तित्व पर आधारित है। गांधीजी के लिए मनुष्य मशीनों से कहीं अधिक महत्व का था। और उनकी निगाह में ऐसी कोई भी व्यवस्था अवांछनीय एवं त्याज्य थी जो मनुष्य को एक बड़े पहिये में एक पुरजे के समान घूमने वाला बना देना चाहती हो। हमने सदा ही अमरीकी पूंजीवाद और सोवियत साम्यवाद की दो सीमाओं को मानव व्यक्तित्व और जीवन के स्वस्थ विकास के लिए अहितकर माना है। लगभग दोनों ही प्रथाएं आर्थिक दृष्टि से बड़ी भद्दी हैं जिससे भारत को, अपनी भलाई और संसार की भलाई

के लिए, बचकर ही चलना होगा। पूंजीवादी या साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर हम चाहते हैं कि भारत एक संतुलित व बीच की अर्थ-व्यवस्था को आगे बढ़ाये—हम "मिली-जुली" अर्थ-व्यवस्था, इस शब्द को पसन्द नहीं करते—और यह कार्य भारत को अपनी प्रतिभा और अपनी संस्कृति के अनुसार करना होगा। ऐसी संतुलित अर्थ-व्यवस्था में हम "सब से अधिक लोगों की सब से अधिक भलाई" की पुकार नही करेंगे बल्कि सर्वोदय यानी "सबकी भलाई" की फिक्र करेंगे। इसमें दूसरे के श्रम के शोषण की बजाय हम "रोटी-श्रम" दर्शनशास्त्र को आगे बढ़ायेंगे, जिसका अर्थ यह है कि हर आदमी अपनी रोटी अपने ही श्रम से, अपना पसीना बहा कर खाये। हम लोगों का जीवन-यापन-स्तर ऊंचा उठाने की बजाय लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा उठाना चाहेंगे।

अतः यह नितान्त आवश्यक है कि हम उद्जन बम के अर्थशास्त्र को समझें ताकि हम उसके बहुत दूर तक पड़ने वाले असर को भी समझ सकें। उद्जन बम का सब से सही जवाब अहिंसा, विकेन्द्रीकरण, सर्वोदय एवं आत्मशक्ति पर आधारित गांधीवादी दृष्टिकोण ही हो सकता है। आर्थिक झगड़ों और सैद्धान्तिक संघर्षों के बुनियादी कारणों को हटाए बिना उन बमों पर प्रतिबन्ध लगाना असम्भव ही होगा, कारण वह तो बड़े गहरे मर्ज का द्योतक है। हमारा यह भी दृढ़ मत है कि विज्ञान के इस युग में अहिंसा ही सब से अधिक क्रियात्मक चीज हो सकती है। यदि विज्ञान का जोड़ हिंसा के साथ किया गया तो निश्चय ही उससे सारी मानव जाति का खात्मा हो जाएगा। और यदि विज्ञान का सम्बन्ध अहिंसा से जोड़ा गया तो उससे एक अच्छे और सुखी विश्व के निर्माण के लिए मार्ग प्रशस्त होगा। निश्चय ही उद्जन बम संसार के सब शान्तिप्रिय लोगों की आत्मा को एक चुनौती है। उद्जन बम मानवता के विरुद्ध एक पाप है। वह परमात्मा के विरुद्ध एक निन्दनीय कृत्य है।

१८ अप्रैल, १९५४